ICN: H-209/2023

जल संचयन

भा.कृ.अनु.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली-110012

ICN: H-209/2023

जल संचयन

भा.कृ.अ.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

मार्च 2023 में प्रकाशित

निदेशक
अशोक कुमार सिंह

संयुक्त निदेशक (अनुसंधान)
विश्वनाथन चिन्नुसामी

संकल्पना
हिन्दी प्रकाशन समिति

लेखक
मान सिंह
डी.के. सिंह
ए.के. मिश्र
सुषमा सुधिश्री
हिमानी बिष्ट

संपादन
अनिल दहूजा
अतुल कुमार

सहयोग
बी.एस. रावत

उद्धरण : जल संचयन, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

मुद्रित प्रतियां : 500

मूल्य : 100/–रु.

ICN : H-209/2023
© 2023 – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, सर्वाधिकार सुरक्षित
वेबसाइट : www.iari.res.in

प्रकाशकः निदेशक, भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली की ओर से प्रकाशन यूनिट द्वारा प्रकाशित एवं एम.एस. प्रिंटर्स, सी–108/1, बैक साइड, नारायणा औद्योगिक क्षेत्र, फेस–I, नई दिल्ली–110024, मो. 7838075335, दूरभाषः 011–45104606, ई–मेलः msprinter1991@gmail.com द्वारा मुद्रित

आमुख

राष्ट्रीय स्तर पर आज ग्रामीण एवं बाहरी क्षेत्रों में जितनी जल की आवश्यकता है, विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न समय में उतनी आपूर्ति नहीं हो पा रही है। जनसंख्या वृद्धि भी जल की मांग को बढ़ा रही है। अभी हाल ही में यह देखा गया है कि विभिन्न महानगरों में जलापूर्ति की समस्या एक भारी संकट का रूप ले चुकी है। आज भारत में ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व में जलवायु परिवर्तन की पृष्ठभूमि में दिनों दिन जलाभाव की समस्या विकराल रूप ले रही है।

इस संकट की उत्पत्ति सतही व भूजल दोनों के यथास्थान एवं हर समय समुचित मात्रा में न उपलब्ध होने के कारण से है। वर्तमान में इस समस्या के दीर्घकालिक समाधान के लिए वैज्ञानिकों, नीति–निर्माताओं, इंजीनियरों, समाजसेवियों और विभिन्न क्षेत्रों के बुद्धिजीवियों के मध्य जलाग्रह, जल गोष्ठी एवं जल मंथन हो रहा है। बहुत दिनों से लंबित विभिन्न नदियों एवं महानदियों को आपस में जोड़कर राष्ट्रीय जलापूर्ति के समाधान की योजना को कार्यान्वित करने की कोशिश की जा रही है। नदियों को आपस में जोड़ने वाली महत्वाकांक्षी परियोजना को कार्यान्वित करने में बहुत ही ज्यादा धन एवं समय लगने की संभावना है जिसके फलस्वरूप वांछित जल संसाधन विकास प्राप्त करने में बहुत देरी हो सकती है। अतीत में नियोजित ऐसी अनगिनत परियोजनाओं, जिनमें टिहरी बांध और सरदार सरोवर परियोजना प्रमुख हैं, को पूरा होने में 30 से 35 वर्ष का समय लग गया। अगर इसको सरल भाषा में समझें तो जिस किसान ने इन परियोजनाओं के कमान क्षेत्र में आने वाले अपने खेत पर 30 वर्ष की आयु में सिंचाई के लिए पानी का इंतजार करना शुरू किया और जब वह 65 वर्ष का हो जाता है तब उसके खेत पर इन परियोजनाओं से सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध हो पाया।

इन बड़ी परियोजनाओं के सृजन कालखण्ड में अनेकों सामाजिक, आर्थिक, विधिक, न्यायिक एवं राजनैतिक समस्याऍं पैदा हो जाती हैं जिनका निवारण अत्यंत दुष्कर होता है। अतः अब समय आ गया है कि हमें जल संरक्षण, जल संग्रहण अथवा जल संचयन के परंपरागत तौर–तरीकों को ढूंढ़ना चाहिए। अभी हाल ही में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर देशव्यापी जल शक्ति अभियान को तेजी से आगे बढ़ाने पर जोर दिया। उनकी इस उक्ति से जल संरक्षण को लेकर जन–जन में यह भाव जग गया कि राष्ट्रव्यापी स्तर पर जब तक जल संरक्षण पर होने वाला काम एक जन आंदोलन न बन जाए तब तक सस्टेनेबल डेवलपमेंट गोल (एस.डी.जी)को प्राप्त करना असंभव होगा।

जल संसाधनों के संरक्षण एवं उचित प्रबंधन के लिए एकमात्र सही विकल्प यही है कि गांव स्तर पर जन सहभागिता के माध्यम से छोटे, मंझोले, बड़े तालाब का निर्माण जन शक्ति ही करे। ऐसी अवधारणा से जलवृष्टि उपरांत, अनावश्यक बह जाने वाले वर्षा जल का संचयन कर, सतही जलापूर्ति एवं भूजल संभरण में वृद्धि की जा सकती है। सतत जल संरक्षण का अभ्यास प्राकृतिक संसाधन की उपलब्धता को संतुलित बनाये रखने में सहायक होगा। जल संचयन जैसे सामयिक विषय पर जल प्रौद्योगिकी केन्द्र के परियोजना निदेशक के नेतृत्व में केन्द्र के अनुभवी वैज्ञानिकों ने इस प्रकाशन की रचना की है। इस रचना में जल संचयन हेतु आवश्यक वैज्ञानिक, तकनीकी, पर्यावरणीय और सामाजिक पहलुओं को शामिल किया गया है। लेखकों का प्रयास सराहनीय है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि 'जल संचयन' में दी गयी जानकारी शासन, प्रशासन और समाज को जल शक्ति अभियान और जल जीवन मिशन को सफल बनाने में सहायक होगी, साथ–साथ इन सभी के सहभागी प्रयासों से सर्वत्र जल उपलब्धता बढ़ेगी और सभी क्षेत्रों में समृद्धि के नये रास्ते खुलेंगे।

दिनांकः 13 मार्च 2023 — **(अशोक कुमार सिंह)**
स्थानः नई दिल्ली — निदेशक

प्राक्कथन

जीवन और जल के जीवन्त संबंधों को जैसा हमारी भारतीय सभ्यता ने समझा है वैसा शायद किसी और ने नहीं और यही कारण है कि हमने सदा ही जल को पवित्र तत्व माना है। इसीलिए हमारी संस्कृति और सभ्यता जल से परिपूर्ण नदियों के किनारे ही विकसित होते हुए समृद्ध हुयी। वर्षा जल संरक्षण भारत में वैदिक काल से ही किया जाता रहा है। प्रायः पोखर, बावली, तालाब, ताल–तलैया, खडिन, टैंक आदि में जल संचयन किया जाता था, जो आज की संस्कृति में देखना दुर्लभ होता जा रहा है। प्रत्येक गांव में छोटे–छोटे तालाबों एवं पोखरों से वृष्टि उपरांत भूमि सतह पर जो जल प्रवाहित होता है उसको बहुत ही कम समय, कम मेहनत और कम खर्च में संचयित किया जा सकता है। इस संसाधन का उपयोग कृषकों के खेतों पर सिंचाई के लिए, पशुओं आदि के पीने के लिए उपयोग मे लाया जा सकता है।

यह मॉडल देश के 115 आकांक्षी जिलों में बड़ी सहजता से लागू किया जा सकता है। इस अभियान को मूर्तरूप देने में अनुरक्षण व रखरखाव में स्थानीय बेरोजगारों, श्रमिकों को मनरेगा से काम मिल सकता है। इस अभियान में अनेकों कार्यदिवस का सृजन होगा जिससे ढ़ेरों रोजगार के अवसर बनेंगे। जनशक्ति की सामर्थ्य से इन प्रत्येक आकांक्षी जिलों में छोटे–छोटे जलाग्रह राष्ट्रव्यापी 'जल जन आंदोलन' या एक बड़ा जल संरक्षण अभियान खड़ा हो सकता है। यदि सामूहिक प्रयास से बड़े पैमाने की जन सहभागिता हासिल हुई तो निकट भविष्य में भारी मात्रा में जल संरक्षण कर सतह पर ही जल उपलब्धता में वृद्धि ही नहीं, बल्कि भूजल संभरण को भी बढ़ाया जा सकता है, जिसे हम जल की भविष्य निधि कह सकते हैं।

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जल की मांग का समाधान "खेत का पानी खेत में" सिद्धान्त के अनुपालन से संभव है। वर्षा जल संरक्षण के माध्यम से इसे सहज रूप से प्राप्त किया जा सकता है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि वर्तमान जल संकट सतही एवं भूजल दोनों के अभाव से उत्पन्न हुआ है। इसलिए वैज्ञानिक एवं इंजीनियरिंग विधियों का सदुपयोग कर सभी ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में वर्षा जनित अपवाह (रनऑफ) का संचयन करना ही होगा। इसके क्रियान्वयन में यह सावधानी अवश्य बरती जायेगी कि भूजल भण्डार में प्रदूषित जल का संभरण (रिचार्ज) न हो जाये। असंख्य प्राप्त अभिलेखों से ज्ञात है कि वर्षा जल को संरक्षित करने हेतु तालाबों का निर्माण सबसे पहले कदम्ब राजाओं द्वारा चौथी शताब्दी में हुआ। तदोपरांत कालिंजर के चंदेल राजाओं ने नौवीं तथा दसवीं शताब्दी में बुंदेलखण्ड क्षेत्र में जल संरक्षण का कार्य कराया था। वर्षा जल संचयन एवं संरक्षण भारतीय संस्कृति एवं परंपरा का अभिन्न अंग रहा है। वैदिक ग्रंथों में इस बात का जिक्र रहा है कि हम प्रत्येक वस्तु के लिए धरती माँ का दोहन जितना भी करते रहें परन्तु जल समुचित मात्रा में धरती

को अवश्य वापस करते रहें अन्यथा पृथ्वी पर जीवन–यापन का संतुलन बिगड़ जायेगा। यही असंतुलन आज हम देख रहें हैं। जल की मांग लगातार बढ़ रही है। यह मांग बहुआयामी तथा उत्तरोत्तर बढ़ने वाली है। तद्नुसार जल भंडारों पर भारी दबाव है। बढ़ते दबाव के कारण देशव्यापी पैमाने पर जल संचयन, जल संरक्षण और भूजल संवर्धन का कार्य अत्यन्त चुनौतीपूर्ण है। इसलिए पर्याप्त जल संचयन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये जहां एक तरफ सघनता से भूजल संवर्धन तथा सतही जल संग्रहण के कार्य वैज्ञानिक विधि से करने होंगे, वहीं दूसरी तरफ परस्पर सहयोग से भूजल का बुद्धिमतापूर्ण दोहन तथा प्रबंधन अत्यन्त आवश्यक होगा। इस पुस्तिका में 'जल संचयन' को बढ़ाने की रणनीति तथा जल प्रौद्योगिकी केन्द्र के वैज्ञानिकों द्वारा किये जाने वाले कार्यों के बारे में विधिवत उल्लेख किया गया है।

मैं आशान्वित हूं कि राष्ट्रीय स्तर पर चल रहे जल शक्ति अभियान को सफल बनाने में हमारे सहकर्मी वैज्ञानिकों का प्रयास फलीभूत होगा।

विश्वनाथन

(विश्वनाथन चिन्नुसामी)
संयुक्त निदेशक (अनुसंधान)

दिनांकः 13 मार्च 2023
स्थानः नई दिल्ली

प्रस्तावना

ग्रामीण क्षेत्र में वर्षा जल का संचयन एवं संरक्षण ग्राम पंचायत स्तर पर छोटे–छोटे जल ग्रहण क्षेत्र को इकाई मानकर करना श्रेयस्कर होगा। प्रायः ग्रामीण क्षेत्र कृषि व्यवसाय बहुल होता है। कृषि व्यवसाय की सुरक्षा जल सुरक्षा प्राप्त कर लेने से ही संभव हो पाती है। आजकल के जलवायु परिवर्तन से ऐसा देखा गया है कि भिन्न–भिन्न स्थानों एवं समय पर जलवृष्टि का रूप बदल सा गया है। आमतौर पर वर्षा वाले दिनों की संख्या घटती हुई प्रतीत होती है और इतना ही नहीं बहुत कम समय में यानी 1 से 3 दिन में इतनी अतिवृष्टि होती है कि कभी–कभी किन्ही क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा एक महीने से डेढ़ महीने में होने वाली वर्षा के बराबर होती है। कभी–कभार असामयिक वर्षा का परिमाण भी बहुत होता है। ऐसी परिस्थिति में ग्रामीण क्षेत्रों में वर्षा जल संरक्षण के लिए भूमि पर छोटे–बड़े जलाशय बनाकर तैयार रखने से वर्षा जल संरक्षण त्वरित गति से हो सकेगा।

शहरी क्षेत्रों में छोटे–बड़े मकानों की छत, पक्की सड़कों तथा फुटपाथों से प्राप्त वर्षा जल, बड़े नालों के माध्यम से त्वरित गति से नदियों में व्यर्थ बह जाता है। इस व्यर्थ बह जाने वाले जल को रोकने का पूरा प्रयास किया जाना चाहिये।

जल उपलब्धता की समस्या का समाधान सिर्फ जन–जन में एक जागरूकता और जल के प्रति संवेदनशीलता स्थापित कर दर–दर पानी के संरक्षण के कार्य से संभव हो सकेगा। सामूहिक रूप से ऐसा प्रयास हो कि "वर्षा जल संरक्षण" गांव स्तर से शुरू होकर अपने में जनशक्ति को समाहित करते हुए एक राष्ट्रव्यापी 'जल–जन आंदोलन' बन जाए। जन–सहभागी पद्धति से राष्ट्रव्यापी जल संरक्षण कर केवल जलापूर्ति का ही समाधान नहीं किया जा सकता बल्कि सूखे व बाढ़ की पुनरावृत्ति को भी रोका जा सकता है। इस प्रकार जनशक्ति से जल को शक्ति प्रदान की जा सकती है।

भारतवर्ष में वर्षा जल संचयन के विभिन्न प्रकार के रंग–ढंग विभिन्न प्रांतों में देखने को मिलते हैं। बीते कई दशकों में बदलती परिस्थितियों के चलते वैज्ञानिकों ने अपने शोध, अध्ययन और अनुसंधान के परिणामस्वरूप बहुत से नवाचार किये हैं, प्रौद्योगिकी विकसित किये हैं जिससे संचयित जल संसाधनों की स्थिति के अनुसार कृषक, सिंचाई में जल की 30 से 40 प्रतिशत तक बचत करते हुए बहुत अच्छा फसलोत्पादन कर सकते हैं। इस बुलेटिन में सूक्ष्म सिंचाई पद्धति की क्षमता को विधिवत दर्शाया गया है। मेरा पूर्ण विश्वास है कि यह प्रकाशन जल प्रौद्योगिकी केन्द्र की ओर से कृषक समुदाय, जल विज्ञान के छात्रों और वैज्ञानिकों को उपहार सिद्ध होगा। मैं इस प्रकाशन से जुड़े सभी सहयोगियों को उनके योगदान के लिये आभार ज्ञापित करता हूं।

मान सिंह

दिनांकः 9 मार्च 2023
स्थानः नई दिल्ली

मान सिंह, प्रधान वैज्ञानिक
जल प्रौद्योगिकी केन्द्र

विषय-सूची

क्रम	विवरण	पृष्ठ
	आमुख	iii
	प्राक्कथन	v
	प्रस्तावना	vii
1.	परिचय	1
2.	जल संचयन के रंग–ढंग	7
3.	भूजल पुनर्भरण एवं प्रबंधन	30
4.	जल संरक्षण प्रौद्योगिकी का कार्यान्वयन	38

परिचय

पृथ्वी का दो तिहाई भाग जल और एक तिहाई भाग थल है। यद्यपि जल इस ग्रह का सर्वाधिक उपलब्ध संसाधन है परन्तु मानव उपयोग के लिये यह तीव्र गति से दुर्लभ होता जा रहा है। इस अपार जल राशि का लगभग 97.5% भाग खारा है और 2.5% भाग मीठा है। इस मीठे जल का भी 75% भाग हिमखण्डों के रूप में, 24.5% भूजल, 0.03% नदियों, 0.34% झीलों एवं 0.06% वायुमण्डल में विद्यमान है। ज्यों–ज्यों पृथ्वी की आबादी में वृद्धि एवं सभ्यता का विकास होता जा रहा है जल का खर्च बढ़ता जा रहा है। आधुनिक शहरी परिवार प्राचीन खेतिहर परिवार की अपेक्षा कई गुना अधिक जल खर्च करता है। संयुक्त राष्ट्र संगठन का मानना है कि विश्व के 20% लोगों को पर्याप्त जल तथा लगभग 50% लोगों को स्वच्छ जल उपलब्ध नहीं है। भारत में विश्व के कुल भू क्षेत्र का लगभग 2.45%, जल संसाधनों का 4% तथा जनसंख्या का लगभग 18% भाग पाया जाता है। देश में एक वर्ष में वर्षा से प्राप्त कुल जल की मात्रा लगभग 4,000 बीसीएम (बिलियन क्यूबिक मीटर) है जिसमें से 1,869 बीसीएम जल सतही और भूजल के रूप में उपलब्ध है। इसमें से मात्र 60% जल का लाभदायक उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार देश में कुल उपयोगी जल संसाधन 1,122 बीसीएम है, लेकिन देश में प्रति व्यक्ति वार्षिक जल की उपलब्धता तेजी से घट रही है। देश में प्रति व्यक्ति वार्षिक जल उपलब्धता वर्ष 1951 में 5,178 घन मीटर थी जो अभी वर्ष 2021 में घटकर 1,486 घन मीटर रह गई है तथा यह वर्ष 2051 तक 1,228 घन मीटर घट जाने का अनुमान है। मानव जिस तीव्र गति से जलस्रोतों को अनुचित शैली में दोहन कर रहा है वह भविष्य के लिये खतरे का संकेत है। इसलिये मानव जाति को वर्तमान एवं भावी पीढ़ी को इस खतरे से बचाने के लिये जल संरक्षण के उपायों पर सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

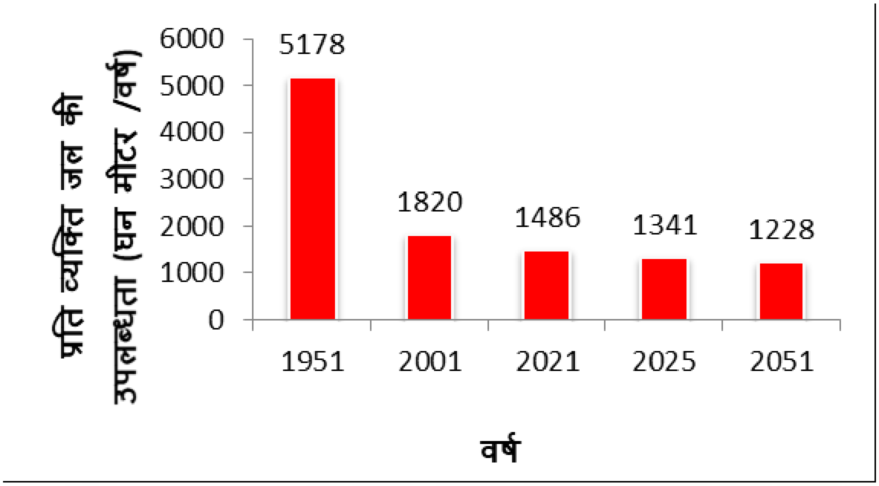

भारत में प्रति व्यक्ति वार्षिक जल उपलब्धता

जल संसाधन के प्रकार

क. सतही जल संसाधन

सभी प्रकार के जल संसाधनों का उद्गम वर्षा अथवा हिमपात है। सतही जल के चार मुख्य स्रोत हैंः नदियाँ, झीलें, ताल–तलैया और तालाब। इनमें से नदी सतही जल का मुख्य स्रोत है। नदी में जल प्रवाह इसके जल ग्रहण क्षेत्र के आकृति और आकार अथवा नदी बेसिन और इस जल ग्रहण क्षेत्र में हुई वर्षा पर निर्भर करता है। भारत के पर्वतों पर जमा हिम पिघलकर गर्मियों के दिनों में नदियों में प्रवाहित होता है। भारत में मुख्यतः 6 नदी बेसिनों में जल वितरित है – सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्र, पूर्वी तट की नदियाँ, पश्चिम तट की नदियाँ, अंतः प्रवाही बेसिन तथा भूजल संसाधन। सतही जल पूर्णतया वर्षा पर निर्भर होता है। भारत में यद्यपि सभी नदी बेसिनों में औसत वार्षिक प्रवाह 1,869 बीसीएम होने का अनुमान किया गया है, फिर भी स्थलाकृतिक, जलीय और अन्य दबावों के कारण प्राप्त सतही जल का मात्र लगभग 690 बीसीएम (37%) ही उपयोग किया जा सकता है।

ख. भूजल संसाधन

भूजल वह जल होता है जो चट्टानों और मिट्टियों से रिसता है और भूमि के नीचे जमा होता है। चट्टानें जिनमें भूजल को संग्रहित किया जाता है, उसे जलभृत कहा जाता है। इसे कुओं, ट्यूब–वैल अथवा हैंडपम्पों द्वारा प्राप्त किया जाता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा भूजल का उपयोग करने वाला देश है, हालांकि भारत में भी भूजल का वितरण सर्वत्र समान नहीं है। चट्टानों की संरचना, धरातलीय दशा, जलापूर्ति दशा आदि कारक भूमिगत जल की मात्रा को प्रभावित करते हैं। भूमिगत जल की उपलब्धि के आधार पर भारत के तीन प्रदेश चिन्हित किये गये हैं –1) उत्तरी मैदान (कोमल मिट्टी, प्रवेश्य चट्टानें) – पर्याप्त जल; 2) प्रायद्वीपीय पठार (कठोर अप्रवेश्य चट्टानें) – कम जल; 3) तटीय मैदान – पर्याप्त जल। केन्द्रीय भूजल बोर्ड के अनुसार भूमिगत जल का 3/4 भाग सिंचाई में प्रयोग होता है; और 1/4 भाग औद्योगिक और अन्य कार्यों में प्रयुक्त होता है। उत्तर–पश्चिमी प्रदेश जैसेः पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और दक्षिणी भारत के कुछ भागों के नदी बेसिनों में भूजल उपयोग अपेक्षाकृत अधिक है। वर्तमान में देश में कुल वार्षिक भूजल पुनर्भरण 436.15 बीसीएम तथा वार्षिक निकालने योग्य भूजल संसाधन 397.62 बीसीएम है। इसके अलावा वार्षिक भूजल दोहन (वर्ष 2020 तक) 244.92 बीसीएम है।

जल संचयन

जल एक अमूल्य प्राकृतिक संसाधन है। स्वच्छ तथा शुद्ध जल मानव सहित सभी जीवित प्राणियों एवं संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र के जीवन के लिए अति महत्वपूर्ण है। विश्वभर में स्वच्छ जल की कमी मानवता मात्र के लिए एक गंभीर संकट बनती जा रही है, जिसका एक प्रमुख कारण जलवायु परिवर्तन आधारित जल वृष्टि असमानता है। जल संकट से बचने हेतु जल ग्रहण क्षेत्रों पर वर्षा जल संचयन इस समस्या का एक स्थायी और टिकाऊ समाधान है, जो कि घरों की छतों से अथवा खेतों में विभिन्न

प्रकार की विधियाँ अपना कर किया जा सकता है। देश में कुल कृषि भूमि का 50% हिस्सा ही समुचित सिंचाई सुविधा से सम्पन्न है, बाकि 50% खेती योग्य भूमि अभी भी वर्षा जल पर निर्भर है। यदि कृषि समुदाय को आत्मनिर्भर बनाना है तो वर्षा पर से उसकी निर्भरता कम करनी होगी। वर्षाजल के संचयन से भारत में कृषि में काफी सहायता मिल सकती है, चूँकि कृषि भारत का एक बहुत महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसमें कि पूरे देश में उपयोग किये जाने वाले जल का लगभग 80% अंश इस्तेमाल होता है। कृषि में अच्छा जल प्रबंधन करना भविष्य की दृष्टि से अति आवश्यक है, क्योंकि इससे हमें अच्छी फसल तो मिलेगी साथ ही साथ कुल उपज में भी बढ़ोत्तरी होगी।

जल संचयन की आवश्यकता

जलवायु विविधता और परिवर्तन

भारत की जलवायु में बहुत विविधता और भिन्नता पाई जाती है जैसे कि– उष्णकटिबंधीय प्रकार से लेकर महासागरीय प्रकार तक, अत्यधिक शीत से लेकर अत्यधिक उष्ण तक, अत्यंत शुष्क से लेकर नगण्य वर्षा तक तथा अत्यधिक आर्द्रता से लेकर मूसलाधार वर्षा तक। इसलिए जलवायु को देश की परिस्थिति को ध्यान में रखकर पंद्रह कृषि क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। भारत में तापमान में भी विविधिता दिखाई पड़ती है, जलवायु परिवर्तन का प्रभाव है, इसलिए किसानों को कभी भारी बारिश तो कभी सूखे का सामना करना पड़ रहा है।

जलवायु परिवर्तन सबसे महत्वपूर्ण वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियों में एक है जिसका प्रभाव खाद्य उत्पादन, जल आपूर्ति, स्वास्थ्य, ऊर्जा, आदि पर पड़ता है। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी विश्व जल विकास रिपोर्ट के अनुसार, जलवायु परिवर्तन बुनियादी मानव आवश्यकताओं के लिये जल की उपलब्धता, गुणवत्ता और मात्रा को प्रभावित करेगा, जिससे अरबों लोगों के लिये स्वच्छ जल की उपलब्धता प्रभावित होगी। रिपोर्ट के अनुसार, बीते 100 वर्षों में वैश्विक जल उपयोग, बढ़ती जनसंख्या, आर्थिक विकास और स्थानांतरण खपत पैटर्न के परिणामस्वरूप लगभग 1% प्रति वर्ष की दर से लगातार बढ़ रहा है। जलवायु परिवर्तन संबंधी मॉडलों के अध्ययन से यह भी पता चला है कि आने वाले वर्षों में वर्षा की मात्रा 5 से 8 प्रतिशत बढ़ सकती है। आजकल भिन्न–भिन्न स्थानों एवं समय पर जलवृष्टि का रूप बदल सा गया है। आमतौर पर वर्षा वाले दिनों की संख्या घटती हुई प्रतीत होती है। इतना ही नहीं बहुत कम समय में यानी एक से तीन दिनों में इतनी अतिवृष्टि होती है कि कभी–कभी किन्ही क्षेत्रों में बारिश की मात्रा एक से डेढ़ महीने में होने वाली वर्षा के बराबर होती है। जलवायु परिवर्तन भविष्य में जलाभाव वाले क्षेत्रों की स्थिति को और गंभीर करेगा तथा उन क्षेत्रों में भी जल की भारी कमी उत्पन्न करेगा जहाँ अभी जल संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। जल के उच्च तापमान और जल में मौजूद ऑक्सीजन में कमी के परिणामस्वरूप जल की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, जिससे पीने योग्य जल की स्वतः शुद्ध करने की क्षमता कम हो जाएगी।

औसत वार्षिक वर्षा की मात्रा एवं वितरण की असमानता

भारत के ज्यादातर राज्यों में अधिकांश वर्षा जून–सितम्बर के दौरान दक्षिण–पश्चिमी मानसून से होती है। भारत में एक वर्ष में औसतन 125 सेमी वर्षा होती है। भारत में वर्षा की मात्रा में बहुत विविधता पायी जाती है। पश्चिमी तटों और उत्तर पूर्व भारत में 400 सेंमी से अधिक वर्षा होती है। भारत और दुनिया में सबसे ज्यादा बारिश मेघालय के मौसिनराम गांव में दर्ज की गई जहाँ एक वर्ष में औसतन 1187 सेमी वर्षा होती है। पश्चिम बंगाल, बिहार, ओडिशा, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और पश्चिमी घाट के निचले हिस्से में 100 से 200 सेमी वर्षा होती है। महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ हिस्सों में 50 से 100 सेमी वर्षा होती है। राजस्थान, गुजरात और आस–पास के क्षेत्रों, जम्मू और कश्मीर के कुछ हिस्सों जैसे लेह और लद्दाख में 50 सेमी से कम वर्षा होती है। फलतः किसी भी वर्ष के भीतर भारत में बाढ़ एवं सूखा दोनों होना संभव है क्योंकि भारत में होने वाली वर्षा स्थानिक एवं कालिक आधार पर बृहद रूप से परिवर्तनीय है।

पारिस्थितिक तंत्र का क्षरण

कई पारिस्थितिक तंत्र, विशेष रूप से वन और नम भूमि भी जल की समस्या से प्रभावित हैं। वन्यजीवों के आवासों को संरक्षित करने के लिए जल संचयन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त, कई मीठे पानी के जीव जल प्रदूषण के प्रभावों को तेजी से महसूस कर रहे हैं क्योंकि यह पारिस्थितिकी तंत्र को बाधित करता है। पारिस्थितिक तंत्रों के क्षरण से न केवल जैव विविधता की हानि होती है, बल्कि यह जल से संबंधित सेवाओं जैसे कि जल शोधन, प्राकृतिक बाढ़ सुरक्षा, कृषि, मत्स्य पालन को भी प्रभावित करता है। दुनिया भर के शोधकर्ताओं ने देखा है कि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के लिए अवक्रमित भूमि सबसे अतिसंवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्र है। यह पश्चिमी भारत की अर्ध–शुष्क अवक्रमित बीहड़ भूमि के लिए विशेष रूप से सच है, जहां अक्सर सूखा, कभी–कभी बाढ़, उच्च वर्षा की घटनाएं, उच्च गर्मी का तापमान, गर्मी की लहरें, मिट्टी का कटाव, मिट्टी के पानी की सीमा, बांझ मिट्टी और उच्च मानव–पशु दबाव आदि पारिस्थितिकी तंत्र के क्षरण में योगदान देता है। सघन कृषि के अन्तर्गत जल के उपयोग की पूर्ति के लिए ट्यूबवैल सिंचित क्षेत्रों में भूजल के अत्यधिक दोहन से लवणता जल भराव, उर्वरक एवं पोषक तत्वों का नुकसान, कीट–बीमारियों का अधिक प्रकोप, मिट्टी संरचना का बिगड़ना तथा बाढ़ आना, सूखा पड़ना, मृदा कटाव, जल उपलब्धता एवं गुणवत्ता में कमी आदि प्रमुख समस्याएं पैदा करती हैं। देश के कुछ भागों में जल स्रोत की भारी कमी देखी जा रही है जिसका मुख्य कारण है वनों की कटाई और अधिक जल की मांग वाले वृक्षों का रोपण।

भूजल के स्तर में कमी

देश के कई भागों में भूजल स्तर निरंतर घटता जा रहा है जिसके मुख्य कारण, अधिक पानी की मांग वाली फसलें उगाना जैसे पंजाब में चावल उगाना, जल संरक्षण और संचयन के अभ्यास की कमी, कम और अनियमित वर्षा का होना, बढ़ता शहरीकरण तथा भूजल का अत्यधिक दोहन हैं। पंजाब,

हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में यह समस्या अधिक देखने को मिल रही है। नीति आयोग के समग्र जल प्रबंधन सूचकांक के अनुसार वर्ष 2002 से 2016 के बीच में भूजल स्तर प्रति वर्ष 10–25 मिमी. कम हो गया है। नदियों के केचमेंट में विगत 60–70 वर्षों में सतह पर मौजूद जल व भूजल के असंतुलित उपयोग, जल संरक्षण, संभरण एवं संवर्धन के आभाव तथा वानस्पतिक आवरण में कमी के कारण भूजल के स्तर में सतत गिरावट हुई है। ज्ञातव्य है कि भारत में 60% सिंचाई हेतु जल और लगभग 85% पेय जल का स्रोत भूजल ही है, ऐसे में भूजल का तेजी से गिरता स्तर एक बहुत बड़ी चुनौती के रूप में उभर रहा है। भूजल संवर्धन और संभरण को लेकर पूरे समाज को जागरूक होना चाहिए। कहाँ और कैसे किया जा सकता है उसका विस्तार पूर्वक वर्णन 'भूजल पुनर्भरण एवं प्रबंधन' अध्याय में दिया गया है।

सिंचाई के लिए जल की बढ़ती माँग

सतही और भूजल का सबसे अधिक उपयोग कृषि में सिंचाई के लिए होता है। इसमें सतही जल का 89% और भूजल का 92% जल उपयोग किया जाता है। देश के कुछ भाग वर्षा विहीन और सूखाग्रस्त हैं। उत्तर–पश्चिमी भारत और दक्षिण का पठार इसके अंतर्गत आते हैं। देश के अधिकांश भागों में शीत और ग्रीष्म ऋतुओं में न्यूनाधिक शुष्कता पाई जाती है इसलिए शुष्क ऋतुओं में बिना सिंचाई के खेती करना कठिन होता है। पर्याप्त मात्रा में वर्षा वाले क्षेत्र जैसे; पश्चिम बंगाल और बिहार में भी मानसून के मौसम में भी कभी–कभी सूखा जैसी स्थिति उत्पन्न होती है जो कृषि के उत्पादन को कम कर देती है। जल प्रबंधन के लिए, देश में कई योजनायें होने के बाद भी कई क्षेत्रों में हमारे किसान आज भी मानसून पर निर्भर हैं। कम जल में फसलें उगानें की विधियाँ अभी तक आम किसानों तक नहीं पहुँच पायीं और अभी भी पुरानी सिंचाई पद्धतियाँ ही प्रचलित हैं। कुछ फसलों में सिंचाई की अधिक आवश्यकता पड़ती है; उदाहरण के लिए धान, गन्ना, जूट आदि जो मात्र सिंचाई द्वारा संभव है। सिंचाई की व्यवस्था बहुफसलीकरण को संभव बनाती है। इसके अतिरिक्त, फसलों की अधिक उपज देने वाली किस्मों के लिए समुचित सिंचाई नियमित रूप से आवश्यक है जो मात्र विकसित सिंचाई तंत्र से ही संभव होती है। ऐसा होने पर सभी किसान पूरे साल अपने खेतों में कोई न कोई फसल उगाकर अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

जल प्रदूषण और गुणवत्ता में कमी

जल गुणवत्ता का तात्पर्य जल की शुद्धता (अनावश्यक बाहरी पदार्थों से रहित जल) से है। अधिक उपलब्ध जल संसाधन, औद्योगिक, कृषि और घरेलू निस्सरणों से प्रदूषित होता जा रहा है और इस कारण उपयोगी जल संसाधनों की उपलब्धता सीमित होती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या के कारण घरों से निकलने वाले अपशिष्ट जल में भी वृद्धि हो रही है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (2021) के अनुसार देश मे अपशिष्ट जल का उत्पादन लगभग 72,368 एमएलडी (मिलियन लिटर प्रति दिन) है जिसमें से केवल 20,235 एमएलडी ही उपयोग मे लाया जाता है और शेष 52,133 एमएलडी अनुपचारित

अपशिष्ट जल के रूप में छोड़ दिया जाता है। जब अनुपचारित अपशिष्ट जल में पाए जाने वाले विषैले पदार्थ झीलों, सरिताओं, नदियों, समुद्रों और अन्य जलाशयों में प्रवेश करते हैं तब वे जल में घुल जाते हैं अथवा जल में विलय हो जाते हैं। इससे जल प्रदूषण बढ़ता है और जल के गुणों में कमी आने से जलीय तंत्र प्रभावित होते हैं। कभी–कभी प्रदूषक नीचे तक पहुँच जाते हैं और भूजल को भी प्रदूषित कर देते हैं। अपशिष्ट जल उपचार के लिये जल प्रौद्योगिकी केंद्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा एक पर्यावरण अनुकूल अपशिष्ट जल उपचार तकनीक विकसित की गयी है जिसका उद्घाटन भारत सरकार के कृषि एवं कल्याण मंत्रालय द्वारा 2 जुलाई, 2014 को किया गया। पर्यावरण के अनुकूल उपचारित अपशिष्ट जल को कृषि में सुरक्षित पुनः उपयोग के लिए इस तकनीक को स्कॉच ग्रुप द्वारा वर्ष 2017 में स्कॉच ऑर्डर ऑफ मेरिट और स्कॉच प्लेटिनम अवार्ड दिया गया।

जल संरक्षण

भारतीय समाज लंबे समय से अनेक विधियों से वर्षाजल संचयन करते आ रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में परंपरागत वर्षा जल संचयन स्थानिक परिस्थितियों के अनुसार सतही जलाशयों, जैसे– झीलों, तालाबों, सिंचाई तालाबों आदि में किया जाता है। राजस्थान में वर्षा जल संचयन ढाँचे जिन्हें कुंड अथवा टाँका; एक ढका हुआ भूमिगत टंकी के नाम से जानी जाती है जिनका निर्माण घर अथवा गाँव के पास या घर में संग्रहित वर्षा जल को एकत्र करने के लिए किया जाता है। वर्षा जल संचयन घर की छतों और खुले स्थानों में किया जा सकता है। आजकल वर्षा जल संचयन विधि का देश के बहुत से राज्यों में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। वर्षा जल संचयन से मुख्य रूप से नगरीय क्षेत्रों को लाभ मिल सकता है क्योंकि जल की माँग, अधिकांश नगरों और शहरों में पहले ही आपूर्ति से आगे बढ़ चुकी हैं। समग्र जल संरक्षण के लिये ज्ञान, कौशल और जन सहभागिता की कमी है। इसलिए एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन की आवश्यकता है। जल मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार जल की आवश्यक मात्रा और गुणवत्ता को बनाए रखना अनिवार्य है। आवश्यक है कि इस विषय से संबंधित सभी पक्ष एक मंच पर आकर विषय से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर चर्चा करें और इस संदर्भ में यथासंभव संतुलित उपायों की खोज करें। वर्षाजल संचयन एक ऐसी पद्धति है जिसके प्रयोग का ज्ञान जन सामान्य को होना आवश्यक है क्योंकि यदि हम जल संग्रह व संचय के प्रति जागरूक नहीं हुए तो बढ़ती हुई जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन और अनियंत्रित जल प्रयोग हमारे भविष्य के लिये अति घातक सिद्ध हो सकते हैं, अतः जो वरदान हमें प्रकृति के द्वारा वर्षाजल के रूप में प्राप्त होता है उसे व्यर्थ जाने देने के बजाय भविष्य के लिये संचित, संग्रहित एवं सवंर्धित करें, इसी में समाज का कल्याण है। ऐसे में जलस्रोतों को संरक्षित रखकर एवं जल का संचयन कर जल संकट का समाधान किया जा सकता है। यदि वर्षाजल का समुचित संचयन हो सके और जल की प्रत्येक बूँद को अनमोल मानकर उसका संरक्षण किया जाये तो जल संकट से आसानी से बचा जा सकता है।

जल संचयन के रंग-ढंग

जैसे कि पहले बताया गया है कि जितनी वर्षा होती है उसका एक भाग सतही प्रवाह के रूप में जलग्रहण क्षेत्र से बाहर निकल कर नालों और नदियों के माध्यम से बहते हुए धीरे–धीरे अंततः समुद्र में मिल जाता है। एक भाग वाष्पोत्सर्जन के द्वारा वातावरण में चला जाता है और बाकी मृदा में रिसता हुआ भूजल में मिल जाता है। वर्षा जल सतही और भूजल के माध्यम से उपयोग किया जाता है। जल की प्रकृति उच्च ढलान से निम्न ढलान की ओर बहने की है तथा वर्षाजल का वेग अधिक होने से मृदा का कटाव होता है तथा पानी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बहकर चल जाता है, जिसके कारण पानी जहाँ गिरता है वहां संरक्षित नहीं हो पाता है। इसलिए वर्षा जल को 'गाँव का पानी गाँव में' और 'खेत का पानी खेत में' अपनाने के लिए जलग्रहण क्षेत्र में जल संचयन संरचनाओं के माध्यम से रोक कर जल की उपलब्धता को बढ़ाया जा सकता है। इस अध्याय में विभिन्न प्रकार के भूमि और जल संरक्षण की उपयुक्त विधियों को क्रमानुसार ऊंचे भूतल से लेकर नीचे वाले तल तक दर्शाया गया है।

जल संचयन संरचनाओं के मुख्य अवयव

- समस्या की जानकारी
- वर्षा की तीव्रता और मात्रा
- जल ग्रहण क्षेत्र
- ढलान और मृदा के प्रकार
- जल प्रवाह
- क्षमता के अनुसार भूमि का उपयोग
- स्थानीय सामग्री की उपलब्धता
- लागत
- पारम्परिक ज्ञान
- लोक सहभागिता

भूमि एवं जल संरक्षण पद्धतियाँ

हमारे देश में विभिन्न प्रकार की स्थलाकृति पायी जाती हैं जैसे; उच्च ढलान, मध्यम ढलान और अल्प ढलान तथा समतल भूमियाँ। उच्च ढलान, अल्प मिट्टी उर्वरा और मिट्टी की कम गहराई वाली जगहों में कृषि वानिकी और वनीकरण उचित रहता है। मध्यम ढलान, अपेक्षाकृत कम उर्वर और कम गहराई की मिट्टियों में औद्यानिक फसलों के साथ सहफसली और कृषि सह चारागाह जैसी व्यवस्था उचित रहती है। अल्प ढलान तथा समतल वाली भूमि में मिट्टी की अधिक गहराई और अधिक उर्वरा शक्ति पायी जाती है जिसमें खेती करना सुगम होता है। इन स्थानों पर भूमि संरचना में विविधता के कारण बनायी जाने वाली स्वस्थानिक जल संचयन संरचनाओं का विवरण निम्न है:

स्वस्थानिक (इन–सीटू) वर्षाजल संचयन

स्वस्थानिक (इन–सीटू) वर्षाजल संचयन तकनीक में जल को उसी स्थान पर एकत्रित कर के रखा जाता है, जहां उसका प्रयोग भविष्य में होना है। शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में जहां वर्षा बहुत कम

होती है, उन क्षेत्रों में वर्षा के मौसम में अधिक से अधिक वर्षाजल संचित करके उपयोग में लिया जा सकता है। यह मुख्य रूप से खेती और घरेलू प्रयोग के लिए वर्षाजल संचयन का एक उपाय है जो सबसे अधिक प्रयोग में लाया जाता है। अपेक्षाकृत गहराई वाले इलाके वर्षाजल के संचयन के लिए आदर्श होते हैं। यह तकनीक सामान्यतः सरल और प्रयोग में लाने में आसान होती है। इस विधि के लाभ और हानियाँ निम्न दर्शाये गए हैः

इन–सीटू वर्षाजल संचयन के लाभ

- इस तकनीक में अतिरिक्त श्रम की बहुत कम आवश्यकता होती है।
- रोपण के पहले भी और बाद में भी इसे कभी भी अपनाया जा सकता है।
- मुख्यतः ढलान वाले खेतों में वर्षाजल संचयन के द्वारा सिंचाई के लिए वर्षाजल का सर्वोत्तम प्रयोग होता है।
- यह मृदा उपयोग के मामले में अतिरिक्त सहिष्णुता उपलब्ध कराता है।
- इस पद्धति के द्वारा कृत्रिम तौर पर भूजल भृत (एक्विफर) का भी पुनर्भरण किया जा सकता है।

इन–सीटू वर्षाजल संचयन की हानियाँ

- ढलान के आधार पर विभिन्न प्रकार की पद्धतियों को अपनाना चाहिए। ऐसा नहीं करने से लाभ कम और हानियाँ अधिक होंगी।
- पथरीली मिट्टी में इसे बनाना कठिन होता है। पत्थर और पेड़ों से ढके इलाकों में इसे बनाने से पहले उसे साफ करना पड़ता है।
- इसे प्रभावी तरीके से प्रयोग के लिए गहरी शुष्क भूमि आवश्यक होती है।
- शुष्क क्षेत्रों में वर्षा के नहीं होने पर जमा जल वाष्पीकृत हो जाता है, जिससे इस विधि का प्रभाव कम हो जाता है।

उच्च और मध्यम ढलान वाली भूमियों के लिए स्वस्थानिक जल संचयन संरचनाएं

रिंग बेसिन, अर्धचंद्राकार वेदिकाएं और नालियां

उच्च और मध्यम ढलान वाले शुष्क क्षेत्रों में पौध रोपण और छोटे कृषि कार्यों के लिए वर्षाजल का संचय करने हेतु, अर्धचंद्राकार वेदिकाएं और नालियां बनाकर वर्षाजल का संचयन और भंडारण किया जाता है। ये पौधों को लगाये जाने से पहले भी और उसके बाद भी बनायी जा सकती हैं, ताकि इनके जल का प्रयोग भविष्य में किया जा सके। मिट्टी की गहराई को ध्यान में रखते हुए खेतों में ही फसलों

की कतारों के बीच जल संरक्षित करने के लिए यह तकनीक प्रयोग की जाती है। इन नालियों में हर दो–तीन मीटर पर मिट्टी के बाँध बनाये जा सकते हैं; ताकि जल को लंबे समय तक रोका जा सके। इसके अलावा मृदा अपरदन को रोका जा सके तथा जल के धरती में अत्यधिक अवशोषण को भी कम किया जा सके। मध्यम ढलान (8–12%) वाले क्षेत्रों में औद्यानिक फसलों के उत्पादन के लिए सूक्ष्म जलग्रहण (1.0 × 0.3 × 0.3 मीटर) हेतु तश्तरी और अर्धचंद्राकार आकार में इन–सीटू जल संचयन और संरक्षण किया जा सकता है। इस तकनीक में रखरखाव की बहुत कम आवश्यकता होती है, मात्र जगह चुनना और तैयार करना ही होता है। इस तकनीक का मुख्य व्यय उपकरण में और उन श्रमिकों के वेतन के रूप में होता है जो नालियां और घेरा बंदी का निर्माण करते हैं। नाली बनाने की प्रक्रिया के अनुसार विभिन्न प्रकार की नालियां बनाई जाती हैं, जैसेः रोपण से पहले बनी नालियां, रोपण के बाद बनी नालियां, समतल घाटी नालियां, अवरोध के साथ नालियां, उन्नत बेड, आंशिक भूमि की नालियां और गुइमेयर्स ड्यूक पद्धति से बनी नालियां ।

दो खेतों के बीच बनायी जाने वाली नाली

दो खेतों के बीच मेड़ के ऊपर के ढलान के स्थान पर नाली बनायी जा सकती है। भूमि में जल के रिसन बढ़ाने के लिये वर्षा जल को खेत के आस–पास संग्रहित किया जा सकता है। स्थान और ढ़लान के अनुसार नाली 60 से 75 सेंमी गहरी बनाकर नाली से निकाली गई मिट्टी को दोनों किनारों पर 30 से 45 सेंमी ऊँची मेंड़ बनायी जाती है। नाली में जल भरा रहने देने के लिए 15 से 20 मीटर के बाद तक जमीन की खुदाई नहीं करनी चाहिए। इस विधि को मध्य प्रदेश के मंदसौर जिले में बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया। इन नालियों में जगह–जगह परकोलेशन चेम्बर बनाने से जल रिसन की गति को बढ़ाया जा सकता है।

समोच्च मेड़बंदी (कंटूर बंड/ग्रेडेड बंड)

ढलान (4–6%) वाली भूमि में मृदा अपरदन से भूमि को स्थिरता प्रदान करने के लिए एवं ऊपरी क्षेत्र से बहकर आने वाले जल के वेग को कम करने तथा जल को स्वस्थानिक स्थितियों में रोककर रखने के लिए 0.3 मीटर ऊंचाई के समोच्च बांधों का निर्माण किया जा सकता है। इन बांधों को थोड़ा–थोड़ा (1–2%) ढलान भी दिया जा सकता है; जिससे इसके पीछे का रुका हुआ जल सावधानीपूर्वक प्रवाहित होता हुआ जल निकास नाली के द्वारा ऊपर से नीचे लाकर जल संचयन संरचनाओं में रोक लिया जाता है। इन बांधों के ऊपर स्थानीय घास जैसे; डूब घास, कंस, मूंज, हाथी घास, कुश या संबूता घास इत्यादि से रोपण करके संरक्षित किया जा सकता है। इन घासों को दो पंक्ति में 0.3×0.3 मी. की दूरी पर रोपा जाना चाहिए। अन्य प्रकार की हेज प्रजातियां जैसे; असम शेड और ग्लिसेडिया 0.5 मी. प्रति पौधे की दूरी पर लगाए जा सकते हैं। समोच्च बाँध (कंटूर बंड) का प्रयोग उच्च और मध्यम ढलान वाली भूमियों पर जल संचयन के साथ–साथ फसल उत्पादन के लिए भी किया जा सकता है। समोच्च बाँध मेड़बंदी आमतौर पर 1 से 2 मीटर की दूरी पर होती हैं। वर्षा जल मेड़बंदी के बीच में गैर कृषि भूमि की क्यारियों में जमा किया जाता है और उसका भंडारण मेड़ के ठीक ऊपर की नालियों में किया जाता है। नालियों के दोनों किनारों पर फसलें उगायी जाती हैं। इसका एक और लाभ यह है कि पैदावार

समान रूप से होती है, क्योंकि हर पौधे को लगभग एक ही जलग्रहण क्षेत्र का जल मिलता है। फसल उत्पादन के लिए कंटूर मेड़बंदी का प्रयोग 5% तक समतल खेत पर बिना रिल्स या ऊंची–नीची भूमि में और 350–700 मिमी वर्षा वाले क्षेत्रों में किया जा सकता है तथा इसके लिए मेड़ों के बीच की दूरी वर्षा की मात्रा के आधार पर निर्धारित की जानी चाहिए।

पर्याप्त वानस्पतिक आवरण के अभाव में, उच्च वर्षा प्राप्त करने वाला क्षेत्र अपवाह वेग के साथ पहाड़ियों के नीचे बहने वाली अपवाह की विशाल मात्रा का उत्पादन करता है। इस प्रकार 1 मीटर खड़े (वर्टिकल) अंतराल पर ढाल युक्त बाँध (ग्रेडेड बंड) का निर्माण किया जाना चाहिए। अपवाह के साथ एक निरंतर छोटी खाई 0.2% ढलान अपस्ट्रीम साइड में अपवाह पानी को पकड़ने के लिए बनाना उचित होता है।

स्टोन बंड

शीर्ष चौड़ाई 0.3 मीटर, नीचे की चौड़ाई 0.45 मीटर और ऊंचाई 0.3–0.45 मीटर के स्टोन बंड 2.5 मीटर (ढलान 12 से 15 मीटर) प्रावधान के क्षेत्र में 10 मीटर क्षैतिज अंतराल पर बनाए जाने चाहिए। सामान्यतः स्टोन बंड उस क्षेत्र के लिए उपयुक्त होता है जहाँ पत्थर स्थानीय रूप में उपलब्ध होता है। बाहर से पत्थर लाने में लागत अधिक लगती है।

समोच्च वेदिकाएं

पर्वतीय और अधिक ढलानों वाले क्षेत्रों में सतही अपवाह का वेग ज्यादा होने के कारण वृक्ष रोपण में कठिनाई होती है तथा पेड़ो की जड़ों को पानी नहीं मिल पता है। इसलिए समोच्च वेदिकाएं बना कर जल संरक्षण तथा वृक्ष रोपण आसानी से किया जा सकता है। समोच्च वेदिकाएं एक अन्तराल पर ढाल खत्म होने के साथ सतही अपवाह का वेग भी कम करते हैं। इस प्रकार खाइयों में भरे जल से मृदा में नमी संरक्षण एवं पुनर्भरण होता है।

समोच्च नलियाँ (कंटूर ट्रेंच और स्टेगर्ड ट्रेंच)

समोच्च खत्तियाँ पहाड़ी इलाकों में खेतों की ढलान पर जल के बहाव से समकोणीय दिशा में कुछ इस तरह से खोदी और बनाई जाती हैं कि इन क्यारियों की खुदाई में जो मिट्टी निकलती है उसे निकाल कर उस बची हुई मिट्टी को एकत्रित कर एक मजबूत मेड़ का निर्माण किया जाता है। इससे जल संचयन के साथ–साथ मिट्टी को भी स्थिरता मिलती है और किसी भी तरह के कटाव की आशंका पूरी तरह समाप्त हो जाती है। यह भूमि में जल के अवशोषण को बढाती हैं एवं भारी वर्षा के दिनों में भी ढलान की मिट्टी को स्थिरता प्रदान करती हैं। इन मेड़ों पर स्थायी रूप से पौध रोपण (स्थानीय घास) किया जा सकता है। कंटूर ट्रेंच 10% से अधिक ढाल पर नहीं बनायी जानी चाहिए तथा इसके आसपास की मिट्टी में भरपूर जलधारण क्षमता होनी चाहिए और साथ ही उपसतह पर जल को भंडारित करने की क्षमता भी होनी चाहिए। स्टेगर्ड ट्रेंच 10% से अधिक ढाल पर और अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बनाया जाता है जिसकी जलधारण क्षमता कंटूर ट्रेंच से ज्यादा होती है। बहुत बार एकसमान आकार

वाली और लगातार चलने वाली नालियों को बनाने की संभावनाएं कम होती है, क्योंकि भूमि की संरचना कटाव युक्त और असमान होती है। ऐसी स्थलाकृतियों में टेढ़े और असम्मुखी असमान विन्यास वाली नालियां अथवा स्टेगर्ड ट्रेंच बनाना अधिक उपयुक्त होता है।

ट्रेंच–कम–बंड

जिन क्षेत्रों में तेज आंधियां और तूफान आदि आते हैं; वहां पर जल का पूरी तरह बहने से रोकना कठिन हो सकता है। इससे बचने के लिए आधे से एक डिग्री की कोणवाली नालियां या जलमार्ग बनाए जाने चाहिए ताकि अतिरिक्त जल को सफलतापूर्वक दूसरी नहरों में ले जाया जा सके। इनका प्रयोग बहते जल को एकत्रित करने और उसकी गति को कम करने के लिए किया जाता है। एकत्रित होने के बाद यह जल मिट्टी के अन्दर चला जाता है जिसके कारण मिट्टी में नमी बनी रहती है तथा साथ ही कुओं का जल स्तर भी बढ़ जाता है। कुएं के इस पानी को पम्प के द्वारा वर्षाकाल के उपरांत सिंचाई के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

निरंतर समोच्च बंड और ट्रेंच–कम–बंड

पहाड़ की निचली दिशा में ढलान के समकोणिक 6–12% ढलान पर लगभग 10–20 मीटर के क्षैतिज अंतराल पर 0.3 मीटर × 0.3 मीटर की गहरी निरंतर खाइयों का निर्माण किया जा सकता है। इस हेतु खाई से खोदी गयी मिट्टी को ढलान की निचली ओर रख कर खाई–सह–बाँध (ट्रेंच–कम–बंड) बनाकर जल संचयन, जल का भूमि में अवशोषण और आवश्यकता पड़ने पर जल का उपयोग भी किया जा सकता है। इस प्रकार के बांधों पर वनस्पतिक अवरोध (संबूटा, संकर नेपियर, झाड़ू घास) और हेज रो प्रजाति (असमसेड, ग्लिसरीडिया और क्रोटोलारिया) के वृक्षों को लगाया जा सकता है तथा जो खाली स्थान बचता है (इंटर–बंड स्पेस) उसमें आम, काजू, सागौन आदि के फलदार वृक्ष लगाए जा सकते हैं।

खेत–बन्धी

खेत–बन्धी बाहरी जलग्रहण क्षेत्र से आने वाले अपवाह के लिए एक छोटा अवरोध होता है जो भूमि की सतह पर जल के प्रवाह को धीमा करती हैं और साथ ही भूजल पुनर्भरण तथा मिट्टी की नमी बनाए रखने में सहायता करती हैं। यह एक आयताकार प्रकार की संरचना है, जिसमें जमीन तीन ओर से घिरी होती है तथा चौथा किनारा उच्च निर्गम क्षेत्र से आने वाले वर्षा जल को ग्रहण करने के लिए खोलकर रखा जाता है। पुस्ता या खेत–बन्धी एक ढाल के साथ समोच्च पंक्तियों में बनाने से ज्यादा प्रभावी होता है। पुस्ता या खेत–बन्धी छोटे पत्थर या मिट्टी की दीवारों से बनता है तथा इसके अंदर जल के साथ–साथ चलने के लिए एक छोटी सी नाली को बनाया जाता है। ये किनारे आमतौर पर 20–100 मीटर लम्बे हो सकते हैं, जबकि आधार खेत–बन्धी, 50–300 मीटर लंबा हो सकता है। पुस्ता या खेत–बन्धी के लिए निम्नलिखित सावधानियां अपेक्षित हैं:

- ❖ वृहद जल धाराओं की निकटता

- ❖ साइट पर व्यापक समतलीकरण की आवश्यकता
- ❖ आसपास की मिट्टी में पर्याप्त जल रिसाव क्षमता
- ❖ आदर्श रूप में ढाल 1.5% से अधिक नहीं हो
- ❖ तलहटी क्षेत्रों में उच्च तीव्रता के साथ कम अवधि वर्षा होनी चाहिये, सालाना वर्षा 50 से 400 मिमी के बीच होनी चाहिये।

खेत की पुरानी मेड को सुदृढ़ (मजबूत) बनाना

टूटी–फूटी मेंड़ों से अथवा चूहों के द्वारा बनाये गए छेदों से खेत के जल के साथ–साथ पोषक तत्व भी बह कर निचले क्षेत्रों में जा सकते हैं; इससे न केवल जल का ह्रास होता है बल्कि फसलोत्पादन भी बुरी तरह प्रभावित हो सकता है। पहाड़ की तलहटी के नीचे की ढलान वाली कृषि भूमि में कटाव हो जाता है और मिट्टी बहकर बहु–दिशात्मक ढलानों के साथ एकत्रित हो जाती है या फिर बह जाती है जिस के कारण छोटी–उथली गलियाँ बन जाती हैं। इसलिए समय के साथ जीर्ण–शीर्ण हुई मेंड का नवीकरण करने से स्थायित्व और खेत की जल धारण क्षमता दोनों को ही बढाया जा सकता है। मेंड की ऊँचाई चारों तरफ से कम से कम 30 सेमी होने से पर्याप्त जल संचयन होता है, साथ ही पैदावार भी बढ़ती है। इसे सफल बनाने के लिए मेड को सुदृढ़ करने का काम सामुदायिक स्तर पर लोक सहभागिता के साथ होना चाहिए।

सीढ़ीदार खेत (बेंच टेरस)

अधिक तीव्र ढलान युक्त (6–50%) एवं अधिक वार्षिक वर्षा (>1000 मि.मी.) वाले पर्वतीय क्षेत्रों में सीढ़ीदार खेत या वेदिकाएं (जिन्हें बेंच टेरस कहा जाता है) बनायी जाती हैं। विभिन्न प्रकार की संरचनाओं में अपवाह जल का संकलन करके कृषि कार्यों, औद्यानिकी तथा वानिकी हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है।

आन्तरिक ढलान युक्त बेंच टेरस

जिन पहाड़ी क्षेत्रों में मध्यम से लेकर अधिक वार्षिक वर्षा एवं क्षेत्र ढलान 6 से 50% तक होता है वहां इन संरचनाओं का निर्माण किया जाता है। भारत के पूर्वी और पश्चिमी घाट के क्षेत्रों हेतु ये संरचनाएं अधिक उपयुक्त पायी गयी हैं।

वाह्य ढलान युक्त बेंच टेरस

अपेक्षाकृत कम वार्षिक वर्षा (500–1000 मि.मी.), गहरी मिट्टी तथा भारी अथवा काली मिट्टी के क्षेत्रों में वाह्य ढलान युक्त बेंच टेरस बना कर जल संचयन एवं प्रबंधन के आधार पर कृषि कार्य किये जाते हैं। महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं तमिलनाडु के पहाड़ी क्षेत्रों में ये संरचनाएं अधिक प्रचलित हैं।

समतल बेंच टेरस

इस प्रकार की बेंच टेरस का उपयोग धान की फसल की खेती करने के लिए किया जाता है जिसमें टेरस बेड को शून्य स्तर तक समतल किया जाता है।

पत्थर की खदानों को जल संचयन संरचनाओं में बदलना

कई जल ग्रहण क्षेत्र देखे गए हैं जिनमें पत्थर की खुदाई के उपरान्त बड़ी गहरी खदानें बची रह जाती हैं। इस प्रकार के जलग्रहण क्षेत्रों में खदान के माध्यम से निर्मित बड़े और पर्याप्त रूप से गहरे अवसादों को पुनर्निर्मित करके सूखे के दौरान वृक्षारोपण तथा फसलों की सिंचाई के लिए जल भंडारण तालाबों में परिवर्तित कर दिया जाता है।

सड़क के किनारे पोखर, पुकुर या डाबरी

खेत में आर्द्रता, नमी और भूमि से सूक्ष्मवाहिनी (केपिलरी) में जल प्रवाह बनाए रखने के लिए पोखर बनायी जा सकती है। खेत की नालियों को पोखर से जोड़ देना उचित होता है। पोखर का स्थान और आकार सुविधा अनुसार रखना चाहिए। गोल पोखर 4–5 मीटर व्यास का बनाया जा सकता है। एक हेक्टयर खेत में दो–तीन पोखर बनाये जा सकते हैं। सड़क के दोनों ओर पोखर, उथली क्यारियां, कलर्वट (छोटी पुलिया) में रोक बनाकर जल को रोकने और रिसन बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। इससे सड़क किनारे के पेड़–पौधे तेजी से बढ़ते हैं, जिससे हरियाली व जैव विविधता बढ़ेगी।

लूज बोल्डर/रॉक चेक डैम

अनुचित भूमि उपयोग और वनों की कटाई के परिणामस्वरूप भूजल विसर्जन के साथ अपवाह जल के वेग द्वारा कटाव हो सकता है। ये गहरी नालियां बंजर भूमि का विस्तार करती हैं और फसल को बड़ी हानि पहुँचाती हैं। उनके आगे के विस्तार पर अंकुश लगाने के लिए, जल निष्कासन नाली का उपचार (ड्रेनेज लाइन ट्रीटमेंट) लूज बोल्डर चेक डैम की श्रृंखला के साथ किया जा सकता है, जिनमें से प्रत्येक में 0.6 मीटर की शीर्ष दीवार बढाव (हेड वाल एक्सटेंशन), 1–1.2 मीटर की ऊँचाई, 1:2 का ऊपरी (अपस्ट्रीम) ढलान और 4:1 का निचला ढलान बनाया जाता है। नीचे की चौड़ाई और शीर्ष दीवार की चौड़ाई 0.45 मीटर होती है। इन रोक बांधों (चेक डैमों) के ऊपरी भाग में घासें जैसे: इपोमिया कॉर्निया लगाकर सुदृढ़ किया जा सकता है। लूज बोल्डर का निर्माण लंबी घाटी में कम या मध्यम ऊंचाई वाली चट्टानों की दीवार से होता है, जिनके शिखर घाटी के तल के किनारे–किनारे समान ऊंचाई वाले होते हैं। यह तटीय धाराओं को फैलने नहीं देता है। यह बाढ़ के जल को प्रक्षेत्रों पर फैलने तो देता है और नियंत्रित भी करता है ताकि फसल की वृद्धि ठीक ढंग से हो सके। साथ ही यह मृदा के कटाव को भी रोकता है। बांध की दीवार में नाले के अंदर लगभग 1 मीटर ऊंची रखी जाती है परन्तु कहीं–कहीं पर ऊंचाई 80 और 150 सेमी के बीच हो सकती है। बांध की दीवार की उपरी ढलान 2:1 एवं निचली

ढलान 1:2, ऐसा संरचना को अच्छी स्थिरता देने के लिए किया जा सकता है। बाहरी दीवार पर बड़े पत्थरों और अंदर की दीवार पर छोटे पत्थरों का प्रयोग किया जाता है। फसल उत्पादन के लिए लूज बोल्डर का निर्माण निम्नलिखित परिस्थितियों में किया जा सकता है :

- वर्षाः 200–750 मिमी; शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए।
- मिट्टीः सभी कृषि मिट्टी– खराब मिट्टी का उपचार किया जा सकता है।
- ढलानः 2% से कम हो तो अच्छा है ताकि जल प्रभावी तरीके से फैल सके।
- स्थलाकृतिः चौड़े तथा कम ऊँचाई वाले (ड्राप) बेड।

गली प्लग, नाला बाँध एवं चेक डैम

यह वह व्यवस्था है जिसका मुख्य उद्देश्य ढलुई भूमि पर छोटे–छोटे अवरोधक बनाकर मृदा में नमी की स्थापना करना है। इस प्रकार की संरचनाएं मुख्यतः गली, नाला या धाराओं पर सतही जल के प्रवाह को रोकने एवं पारगम्य मृदा में या शैल सतह पर लम्बी अवधि के लिए जल ठहराव के लिए किया जाता है। गली प्लग, जो साधारणतः प्रथम श्रेणी की धाराओं पर बनायी जाती है, की तुलना में नाला बांध एवं चेक डैम कम ढाल वाले क्षेत्रों में बड़ी जल धाराओं पर बनाये जाते हैं। ये संरचनायें अस्थाई एवं स्थाई दोनों प्रकार की हो सकती है। जल धारा के अधिकतम अपवाह के दोहन के लिए चेक डैम की श्रृंखला भी बनाई जा सकती है जिससे विस्तृत क्षेत्रीय स्तर पर पुनर्भरण हो सके। अस्थाई संरचनायें स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्रियों से बनाये जाते हैं जैसे सूखी लकड़ी द्वारा बनाया गया बांध, ढीला एवं चूना पत्थर, मेसोनरी चेक डैम, गेबियन चेक डैम, बुने तार बाँध आदि। स्थायी संरचनायें पत्थर, ईंट एवं सीमेंट से बनायी जाती हैं। चेक डैम बनाने के लिए स्थल चुनाव करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि पारगम्य मृदा या अपक्षयित शैल की पर्याप्त मोटाई हो जिससे एकत्रित जल का रिसाव पुनर्भरण के लिए कम से कम समय में हो सके।

निम्न ढलान वाली समतल भूमियों के लिए स्वस्थानिक जल संचयन संरचनाएं

निम्न ढलान वाली समतल भूमियाँ जहाँ वार्षिक वर्षा <750 मि.मी. होती है उन क्षेत्रों के लिये निम्नलिखित स्वस्थानिक जल संचयन विधियाँ अपनाई जा सकती हैः

ट्रेंच–कम–बंड/ बंड

खाई के साथ मेंड़बंदी (ट्रेंच–कम–बंड) (खाई की गहराई 20 से.मी. और मेंड़ की ऊंचाई 20 से.मी.), मेंड़ (बंड) (30 सेंमी. ऊंचाई) जल संरक्षण की विधि है, जिसमें मिट्टी की अधिक नमी, फसल में जल का कम तनाव, उच्च सापेक्ष जल सामग्री, एवं अन्य जैव–भौतिक (बायो–फिज़िकल) मापदंडों की उपलब्धता के हो सकती है तथा इसमें फसल उत्पादन सामान्य से 1.25 गुना अधिक प्राप्त हो सकता है।

ट्रेंच–कम–बंड

रेज बेड और फरो/रिज व फरो प्रणाली

रेज बेड और फरो जैसे 30:30, 45:30, 60:30, 75:45, 90:45 (रेज बेड:फरो) और 15 से.मी. ऊंचाई द्वारा बाजरा, मक्का और सोयाबीन को कम वर्षा की स्थिति में मृदा जल उपयोग और पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। यद्यपि, फसल की उपज को 1.5 गुना बढ़ाने के लिए बाजरा, मक्का और सोयाबीन में 90:45 से.मी. की रेज बेड और फरो का प्रयोग किया जा सकता है। उथली भूमि पर उत्पादकता को अधिक बढ़ाने के लिए फिर से, बाजरा और ज्वार को रेज बेड पर और चारा वाली मक्का को उत्पादकता और पोषण को बढ़ाने के लिए फरो में बोया जा सकता है।

रेज बेड और फरो में जल संरक्षण

चौकोर बेसिन टिलेज विधि

बाजरा में स्वस्थानिक (इन–सीटू) जल संरक्षण अभ्यास की चौकोर समतल क्यारी जुताई विधि (बेसिन टिलेज) और 45 से.मी. x 45 से.मी. x 15 से.मी. माप के गड्ढों में ज्वार/बाजरा/मक्का की फसलें और ग्वार/लोबिया को गड्ढों के बीच 75 से.मी. की दूरी के साथ अंतर फसल के रूप में उगाने का प्रयास किया गया और यह पाया गया कि 25–28 क्विंटल प्रति हेक्टेयर बाजरा + 22 से 45 क्विंटल प्रति हेक्टेयर/ग्वार/लोबिया का उत्तम उत्पादन हुआ। बेसिन टिलेज को चौकोर के स्थान पर गोल आकार में भी बनाया जा सकता है।

चौकोर बेसिन टिलेज

गोलाकार बेसिन टिलेज + बाजरा

खाइयां और खान्तियां

इस प्रकार की संरचनाओं को कम ढलान बंजर भूमि एवं मध्यम तथा अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बनाया जाता है। मैदानी क्षेत्रों में वर्षा कालिक जल को नदी–नाले में बहाने से रोकने के लिए निरंतर अथवा विखंडित खाइयां खोद कर जल को एकत्रित किया जाता है जो मृदा में रिसकर अन्ततः भूमिजल पुनर्भरण करता है। खाई एव खांचे की इस विधि में उथली, समतल एवं पास–पास श्रृंखला में बनी हुई खाई एवं खांचे में जल विस्तारित किया जाता है। उथली, समतल एवं पास–पास होने के कारण विस्तारित जल एवं मृदा के बीच संपक्र काल एवं स्पर्श क्षेत्र अधिक रहता है। इन खाइयों में पर्याप्त ढलान भी होनी चाहिए जिससे प्रवाहित जल की गति समान रहे एवं कम से कम अवसाद का जमाव हो। प्रत्येक क्षेत्र के निचले भाग में एक संग्राही खाई की आवश्यकता पड़ती है जोकि जल की अतिमात्रा को मुख्य वाहिका में वापस कर देती है।

लकड़ी से बने हुये रोक बाँध (ब्रशवुड चेक डैम)

घने जंगलों वाले क्षेत्रों में जहां पर पेड़ों की बहुतायत होती है और अपवाह जल के तीव्र बहाव को रोकने की आवश्यकता पड़ती है, वहां पर 50 मिमी व्यास के टुकड़े (ग्लिरिसिडिया और सिमली और इपोमोआ बाध्यकारी सामग्री के रूप) या लकड़ी के लठ्ठों के प्रयोग से एक पंक्ति (सिंगल) अथवा दो पंक्ति (डबल ब्रशवुड) जिनकी लठ्ठे से लठ्ठे की दूरी 0.15 मीटर, पंक्ति से पंक्ति की दूरी 0.5 मीटर, भूमि में गहराई 0.3 मीटर और भूमि से ऊंचाई 1.5 से 2.0 मीटर से अधिक रखते हुए रोक बांधों के निर्माण से जल का सफलतापूर्वक संचयन किया जा सकता है जिससे मिट्टी का कटाव रोकने में भी लाभ होता है।

उप–सतही डाइक/भूमि जल बाँध

उप–सतही डाइक/भूमि जल बाँध छोटी नदियों के आर–पार बाँधा गया अधो–सतही बाँध है, जिसका उद्देश्य भूमिजल प्रवाह को रोकना या धीमा करना है एवं भूमि जल भंडारण बढ़ाना है। अनुकूल स्थानों पर ऐसे बाँधों का निर्माण न सिर्फ नदियों के आर–पार, बल्कि नदी–घाटी के बड़े क्षेत्रों में भूमि जल संरक्षण के लिए किया जाता है।

मिट्टी के नालों (चैनलों) का नवीनीकरण

समय के साथ–साथ किसानों के खेतों से गुजरने वाली नालियां (चैनल) बुरी तरह से नष्ट हो जाती हैं, जिससे आस–पास के खेतों को भी नुकसान होता है। इन चैनलों को वर्षा काल से पूर्व पुनर्निर्मित किया जाना चाहिए, जिसकी नीचे की चौड़ाई 0.45 मीटर और शीर्ष की चौड़ाई 0.6 मीटर होनी चाहिए। चैनल के ताल के स्थिरीकरण के लिए, संबूता घास को 30 सेंमी तक पंक्ति–दर–पंक्ति और पौधे से पौधे के अंतर को रखते हुए कंपित पैटर्न में लगाया जाना चाहिए। अपवाह जल के वेग को कम करने के लिए उपयुक्त स्थानों पर एवं गैर–कटाव स्तर पर छोटे–2 ढीले बोल्डर संरचनाओं का निर्माण किया जाना अपेक्षित है।

ग्रीष्मकालीन जुताई

अप्रैल से मई के अंतिम सप्ताह में पहली वर्षा के साथ ग्रीष्मकालीन जुताई करने से वर्षाकाल में उपलब्ध जल को खेत द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। जलग्रहण क्षेत्रों में ग्रीष्मकालीन जुताई को और बढ़ावा दिया जाना अपेक्षित है।

वैकल्पिक भूमि प्रणाली (कृषि वानिकी या एग्रोफोरेस्ट्री) में जल संरक्षण

समग्र कृषि उत्पादकता बढ़ाने के लिए किसानों को फलदार वृक्षों/वन वृक्षों के साथ कृषि और चरागाह का भी उपयोग करना चाहिए। कई वैकल्पिक भूमि उपयोग प्रणालियां जो विभिन्न कृषि पारिस्थितिक स्थितियों के अनुकूल हो सकती हैं, वे हैं गली फसल (एल्ली क्रोप्पिंग), कृषि–बागवानी प्रणाली (एग्री – होर्टी सिस्टम), वानिकी–चरागाह (सिल्वी–पैस्तोरल) या बागवानी–वानिकी–चरागाह (हॉर्टी–सिल्वी–पैस्तोरल)। इन प्रणालियों को जल संरक्षण प्रणालियों के साथ अपनाने से जल संचयन के साथ–साथ मृदा संरक्षण भी होता है जिससे उत्पादन में वृद्धि होती है तथा स्थिर उत्पादन के लिए संसाधनों का उपयोग उत्तम प्रकार से होता है।

बागवानी – कृषि प्रणाली (हॉर्टी–एग्री सिस्टम)

उत्तम संसाधन प्रबंधन से आय को बढाने की दृष्टि से बागवानी – कृषि प्रणाली (हॉर्टी–एग्री सिस्टम) विकसित किए जाते हैं जैसे 6 x 6 मीटर की दूरी पर बेर के अंतरवर्ती क्षेत्रों में लोबिया/मूंग/चना की अन्य बागवानी – कृषि प्रणाली जिसमें दो बेर पौधों के बीच एक पंक्ति में फालसा लगाया जा सकता है जिससे कृषि प्रणाली अधिक दक्ष बनेगी। अच्छी तरह से प्रबंधित सूखी भूमि में स्थित बेर के बाग को प्रति पेड़/वर्ष 50 किलोग्राम फल देना चाहिए। अनुकूलित उत्पादन के लिए 250 पौधे/हेक्टेयर होना चाहिए। इससे आय में वृद्धि 50,000रु./हेक्टेयर के आसपास होगी। यह मानते हुए कि एक किलो बेर की कीमत मात्र 4.रु./किलोग्राम हो तो भी 250 वृक्षों के औसत 50 किलो फल प्रति पौधा के आधार पर व्यक्ति को 50,000 रु./हेक्टेयर का अतिरिक्त लाभ प्राप्त हो सकता है तथा हरे चने/ लोबिया (2.5–3.0 क्विंटल/हेक्टयेर) से 800–1000 रु. की अतिरिक्त आय भी होगी। फलदार पेड़ यदि उपयुक्त रूप से वर्षा आधारित कृषि प्रणाली में एकीकृत हैं; तो खाद्य, ईंधन और चारे, कृषि और मिट्टी और जल के संरक्षण और उत्पादन और आय में स्थिरता सहित समग्र कृषि उत्पादन में आशातीत वृद्धि हो सकती है।

फलदार वृक्ष गहरे जड़ वाले और कठोर होते हैं। वे छोटी अवधि की मौसमी फसलों की तुलना में मानसूनी विपत्तियों को अधिक उत्तम प्रकार से सहन कर सकते हैं। इसलिए, सूखे के वर्ष में जब वार्षिक फसलें सामान्यतः विफल हो जाती हैं या उनका उत्पादन ह्रास अत्यधिक होता है, फलों के पेड़ों की प्रजातियों से अधिक मात्रा में भोजन, चारा और ईंधन प्राप्त किया जा सकता है। किसी भी बाग के पौधों के बीच के खाली स्थान पर दाल वाली फसलें और हरे चारे का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। भिन्न–भिन्न जल संरक्षण प्रणालियों गोल (1.5 मीटर त्रिज्या) या चौकोर रिंग बेसिन, माइक्रो–कैचमेंट (1

मीटर त्रिज्या) और ट्रेंच (45 से.मी.) के साथ बाग–बगीचों में ज्वार, बाजरे, मक्का और बेल के साथ–साथ फलियां जैसे सोयाबीन, मूंग और लोबिया के अंतरफसल में 29 क्विंटल प्रति हेक्टेयर और 19 से 34 क्विंटल प्रति हेक्टेयर (बेल) की पैदावार होती है। खाइयों के ऊपरी भाग की उत्पादकता लगभग डेढ़ गुना तक बढ़ जाती है। मात्र लोबिया की फसल से अर्जित आय रु. 94,300 प्रति हेक्टेयर की तुलना में बेल सह लोबिया से रु. 259300/हेक्टेयर की आय प्राप्ति संभव है।

बागवानी में ट्रेंच + रिंग बेसिन

बेल + लोबिया+ ट्रेंच

बेल +चारा फसल + ट्रेंच

हेज रो प्रणाली

इस प्रणाली में समोच्च मेंड़ों या बंधियों पर पेड़ों या झाड़ियों की पंक्तियों द्वारा बीच में बनाने वाली गलियों में, जिन्हें अले कहा जाता है, खाद्य फसलों को उगाया जाता है। इस प्रणाली की अनिवार्य विशेषता यह है कि छायांकन को रोकने और खाद्य फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा को कम करने के लिए लगाए गयी पेड़ों की पंक्तियों को रोपण के आरम्भ में ही काट दिया जाता है तथा तेजी से बढ़ने वाले डाल वाले पेड़ जैसे ल्यूसीना ल्यूकोसेफला या गिलिरिसिडिया प्रजातियाँ पंक्तियों में लगाए जाते हैं। फसल के मौसम के दौरान, पेड़ों को लगभग 0.5 मीटर की ऊंचाई पर काट दिया जाता है। इन कटी हई डालियों का उपयोग नमी की कमी को रोकने और मिट्टी की पोषकता स्थिति में सुधार करने के लिए किया जाता है। मक्का, चावल, बाजरा, फलियां, तिलहन आदि फसलें पेड़ों की दो पंक्तियों द्वारा बनाई गई गलियों में लगाई जाती हैं। इसे कृषि–वानिकी प्रणाली के रूप में भी जाना जाता है।

जल निस्तारण नाला (डायवर्सन चैनल)

अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों से अतिरिक्त अपवाह जल को सावधानी पूर्वक मोड़ने के लिए 0.65 मीटर की शीर्ष चौड़ाई, 0.3 से 0.45 मीटर की नीचे की चौड़ाई और 0.3 से 0.65 मीटर की गहराई, 100–200 मीटर लंबे नालों के प्रयोग द्वारा नीचे की भूमि को कटाव से बचाते हुए जल को किसी निर्धारित स्थान पर ले जा कर संग्रहीत किया जा सकता है। कहीं–कहीं पर इस प्रकार के डायवर्सन चैनलों को पत्थर की खदानों से बने हुए गहरे और बड़े गड्ढे में छोड़कर सुरक्षित निपटान के लिए रोक दिया जाता है। इन यांत्रिक उपायों के अतिरिक्त, संग्रहीत जल के प्रयोग से विभिन्न कृषि वानिकी प्रणालियाँ जैसे हॉर्टी–पैस्तोरल और हॉर्टी–सिल्वी–पैस्तोरल प्रणाली इत्यादि को भी अपनाया जा सकता है।

प्रयोगात्मक क्षेत्र से सतह अपवाह को रोककर रखने हेतु सभी खेतों में मेंडबंदी

पूसा संस्थान ने वर्षा जल संचयन के द्वारा भूजल पुनर्भरण हेतु बड़ी मात्रा में खाइयों सह बांधों तथा खाइयों के निर्माण किये हैं। सतही अपवाह को भूजल में मिलाने हेतु जल प्रौद्योगिकी केंद्र के समग्र प्रक्षेत्रों में निरंतर खाइयां (45 सेंमी. चौड़ी और 30–45 सेंमी. गहरी) हर मेड़ के ऊपर की तरफ बनायीं गयी हैं, जिससे सारा का सारा अपवाह खेतों में ही रोक लिया जाता है।

मिट्टी की परतों (प्रोफ़ाइल) में मृदा नमी संरक्षण

मिट्टी की परतों (प्रोफ़ाइल) में नमी के संरक्षण के लिए निम्नलिखित या इनमें से कुछ प्रथाओं को आवश्यकतानुसार अपनाया जाना चाहिएः

फसल प्रबंधन या जुताई प्रथाएं

खेत में गहरी जुताई, गर्मी की गहरी जुताई, धूल, मिट्टी, खरपतवार नियंत्रण, इष्टतम पौध घनत्व, इष्टतम रोपण प्रणाली और पंक्ति बुवाई, लीफ स्ट्रिपिंग।

मृदा प्रबंधन प्रथाएं

फसल अवशेषों और कार्बनिक पदार्थों के अलावा पॉलिमर का उपयोग।

मृदा नमी संरक्षण

वाष्पीकरण को रोकने और मिट्टी के जल स्तर में सुधार करने के लिए विभिन्न प्रकार की आच्छादन या मल्च (मृदा मल्च या डस्ट मल्च, स्टबल मल्च, स्ट्रॉ मल्च, प्लास्टिक मल्च) का प्रयोग किया जाना चाहिए।

वाष्पीकरण रोधी (एंटी–ट्रांसपिरेंट्स) का उपयोग

अति शुष्क प्रदेशों में पौधों के ऊपर छिडकाव करके जल मांग को घटाया जा सकता है। काउलीन का छिडकाव (स्प्रे) वाष्पोत्सर्जन की हानि को 20–28% तक कम करता है। जड़ में वृद्धि के लिए साइक्लोसेल जैसे वृद्धि अवरोधक (ग्रोथ रेटर्डेंट्स) का उपयोग किया जा सकता है।

फसल और किस्मों के चयन के माध्यम से उपलब्ध नमी का दक्षतापूर्ण उपयोग

उन्नत और कम जल मांग वाली फसल और किस्मों का चयन, समय पर बुवाई, बुवाई विधि और बुवाई की गहराई, बीज दर, उर्वरक दर, उर्वरक की मात्रा, सामान्य मात्रा का आधा, सख्त बीज, खरपतवार नियंत्रण, इष्टतम रखरखाव के साथ खरीफ फसलों की पौध आबादी में वृद्धि और समय पर कटाई; इत्यादि विधियों को अपना कर उपलब्ध नमी का दक्षतापूर्ण उपयोग करने से शुष्क और अर्ध शुष्क स्थितियों में फसल उत्पादन किया जा सकता है।

अवस्थानिक वर्षाजल संचयन

इन जल संचयन संरचनाओं की विशेषता यह है कि इनमें जो जल संग्रह किया जाता है वह किसी अन्य स्थान पर वर्षा जल अथवा अपवाह के रूप में प्राप्त होता है जिसे किसी निश्चित स्थान पर रोक लिया जाता है। संरक्षित जल को फसल की पैदावार बढ़ाने में प्रयोग किया जाता है।

जलधाराओं, झरनों और स्रोतों के जल का संचयन

इस प्रकार से उपलब्ध जल को भी छोटी बावड़ी बनाकर अथवा जल कुंडी बनाकर विभिन्न प्रकार से प्रयुक्त किया जा सकता है। प्राकृतिक संग्रह स्थानों पर जल सामान्यतः पीने योग्य ही होता है, परन्तु उसकी मात्रा बहुत कम होती है और वह तत्काल समाप्त भी हो जाता है। बावड़ी के बांध को कंक्रीट, मिट्टी और पत्थरों का उपयोग करके बनाया जाता है ताकि बाढ़ आदि में जल को सुरक्षित ढंग से भंडारित किया जा सके। इस जल को सूखे के दिनों में प्रयोग में लाया जा सकता है। रेत बांध (सैंड डैम) प्राकृतिक रेतीले जल भंडारण स्थानों में कृत्रिम तौर पर सुधार करके बनाए जाते हैं ताकि अधिक से अधिक मात्रा में भूजल पुनर्भरण किया जा सके और उस जल को प्रयोग में लाया जा सके।

भंडारण बांध

एक प्राकृतिक वर्षा जलागम क्षेत्र में बांध बना कर जल संचयन किया जा सकता है, जैसे एक नदी घाटी परियोजना में जल को अनेकों जलाशय बना कर उसका उचित स्थान पर भंडारण कर सकते हैं या फिर उस जल को किसी अन्य जलाशय में भी भेजा जा सकता है। ऐसी एक संरचना के पीछे खुले जलाशय की भंडारण क्षमता 20 से लेकर 4,000 घन मीटर तक हो सकती है। वैकल्पिक रूप से, जल की मात्रा को जलागम से सीधे जल इकट्ठा कर ढके हुए भंडारण टैंक में भी संग्रहित किया जा सकता है तथा वितरण से पहले बांध के पीछे संग्रहित जल का उपचार किया जाना चाहिए।

खेत तालाब

कहीं–कहीं पर ग्रामीणों के पास स्नान करने और जानवरों को पेयजल उपलब्ध कराने के लिए जल के भंडारण की कोई सुविधा नहीं होती है। इनकी भूमि में नीचे की ओर बहने वाले जल की रोक हेतु ऊपरी भूमि में खेत तालाब बनाया जा सकता है। गांव के अलावा अन्य स्थानों पर भी वर्षाजल और अपवाह जल को संग्रहीत करने के लिए खेत तालाब बनाये जा सकते हैं। तालाब बनाने हेतु क्षेत्र या स्थान (साइट) चयन के बाद तालाब की भंडारण क्षमता का आंकलन करते हुये 2.5 से 3.5 मी. की गहराई के तालाब का निर्माण करना उचित होता है। तालाब के बहाव के छोर पर सुरक्षा हेतु एक जल निकास संरचना (स्पिलवे) का प्रयोग किया जाना चाहिए। भारत सरकार द्वारा 20 मीटर x 15 मीटर x 3.5 मीटर के खेत तालाब बनाने हेतु 50% तक अनुदान दिया जाता है । भा.कृ.अनु.सं. में निर्मित अनाच्छादित (अन–लाइन्ड) तालाब (लागत लगभग 1.0 लाख रुपये) की भंडारण क्षमता के साथ (आकार 1500 मीटर^3 और माप (25 मीटर x 20 मीटर x 3 मीटर) को प्रति वर्ष 15 लाख लिटर जल भंडारण हेतु उपयोग

किया जा सकता है। इसी प्रकार 3000 घन मीटर धारिता वाले (40 मीटर x 25 मीटर x 3मी. आकार के) आच्छादित (लाइन्ड) तालाब में प्रति वर्ष 3 करोड़ लिटर जल का संचयन किया जा सकता है। जियो मेम्ब्रेन/झिल्ली, ईंट के साथ जियो मेम्ब्रेन/झिल्ली, और प्रबलित सीमेंट कंक्रीट (आरसीसी) जैसे तालाब अस्तर सामग्री की स्थापना लागत, क्रमशः रु. 2 लाख, 3 लाख और 45 लाख होती है। इसी तरह से खेत के अंत में 12 मीटर x 10 मीटर x 3 मीटर के आकार के तालाब का निर्माण सीमेंट+मिट्टी (2:10) की परत के साथ किया जा सकता है। लेकिन आजकल यह पाया जाता है कि बहुत सारे तालाब जो पहले बनाये गये थे काम नहीं कर रहे हैं या उनकी क्षमता घट गयी है। इसलिए तालाबों को पुनर्जीवित करने के प्रयास किये जाने चाहिए।

खेत तालाब

घरों से निकलने वाले अपशिष्ट जल को तालाब में एकत्रित करके उपचारित करके पुनः प्रयोग में लाया जा सकता है। जैसा कि पूसा संस्थान ने इंजीनियर्ड वेटलैंड बनाकर कृषि कुंज आवासीय कालोनी से निकलने वाले घरेलू जल को तालाब में डालकर उपचारित किया है। इसके बाद इस जल को पत्थर, ग्रेवल और टायफा घास द्वारा उपचारित करके सिंचाई के लिए उपयोग में लाया गया है।

धंसा हुआ तालाब

पहाड़ के नीचे के क्षेत्र में अपवाह जल को रोकने तथा कृषि भूमि को क्षरण से बचाने के लिए यह संरचना बनाई जाती है। इसका कोई निश्चित आकार निर्धारित नहीं किया जा सकता है। इसका आकार अपवाह जल का परिमाण तथा तालाब बनाने हेतु उपलब्ध स्थान के आधार पर निर्भर करता है। साधारणतया धँसे हुए तालाबों को 30 मीटर × 30 मीटर × 1.5 मीटर का बनाना उचित होता है।

ये जल के अस्थायी भंडारण हेतु डूबे हुए तालाब होते हैं जिनके द्वारा भूजल पुनर्भरण किया जाता है।

झोला कुंडी

उड़ीसा के तटीय क्षेत्र में, एक विशिष्ट भू–स्थलाकृति का अस्तित्व है; जो पूरे वर्ष जलमग्न रहती है। झोला भूमि में पानी का दोहन करने के लिए सिंचाई के लिए झोला लैंड बैंक के पास झोला कुंडियों (रिचार्ज कुओं) का निर्माण करके जल का संचयन किया जाता है। संचयित जल का उपयोग वर्षाकाल के बाद फसल की सिंचाई हेतु कृषक बंधु पम्प से किया जाता है।

परिस्रवण टैंक

भारत में प्रचलित अपवाह दोहन संरचनाओं में सबसे प्रमुख है परिस्रवण टैंक, जो नाला बंध बनाने के सिद्धांत पर ही आधारित होता है। परिस्रवण टैंक, कृत्रिम रूप से सृजित सतही जल संरचना है जिसके जलाशय में अत्यंत पारगम्य भूमि जल प्लावित हो जाती है जिससे सतही अपवाह परिस्रवित होकर भूजल भण्डार का पुनर्भरण करता है। इनमें सिंचाई या अन्य उद्देश्यों के लिए टैंक से जल विसर्जन के लिए किसी प्रकार की निकास व्यवस्था नहीं होती, फिर भी टैंक को खिसकने (ओवर टापिंग) से बचाने के लिए अतिरिक्त जल के निकास के लिए उत्प्लव मार्ग की व्यवस्था होती है।

रोक बाँध या चेकडैम

रोक बाँध या चेक डैम एक छोटा, अस्थायी या स्थायी बांध है, जिसका निर्माण किसी जल निस्तारण खाई, गली, स्वेल या चैनल के अन्दर किया जाता है, ताकि वर्षा काल में संघनित अपवाह जल प्रवाह की गति को कम किया जा सके। बांध भूमि की सतह में प्राकृतिक गलीज में अस्थायी या स्थायी सामग्री के बनाये जा सकते हैं। इसमें कंक्रीट, मृदा, वनस्पति, पत्थर और झाड़–झंखाड़ आदि का प्रयोग किया जाता है। जहां मिट्टी का प्रयोग किया जाता है, संरचना के कटाव या विनाश से इसे बचाकर रखने की आवश्यकता होती है। यह करने के लिए, विशेषकर एक ठोस स्पिलवे का निर्माण किया जाता है; जहां वे उपलब्ध जल निस्तारण प्रणाली का उपयोग करते हैं, परन्तु बिना किसी विशिष्ट डिजाइन के जलवाहिनियों या स्थायी रूप से बह रही नदियों में रोक बाँध (चेकडैम) का निर्माण नहीं किया जाना चाहिये।

रेत बांध (सैंडडैम)

रेत बांध (सैंडडैम) साधारण, कम लागत और कम रखरखाव वाली ऐसी वर्षा जल संरक्षण तकनीक है जिसका जगह–जगह अनुकरण किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में वर्षा अनिश्चित होती है वहां प्रायः नदियों के तटवर्ती इलाके में काफी रेत इकट्ठी होती रहती है। इन जगहों पर वर्षा के तत्काल बाद जल बहुत तेजी से बह जाता है। ये क्षेत्र प्राकृतिक तौर पर जल भंडारण वाले जल क्षेत्र निर्मित करते हैं। तेज बहाव वाले दिनों में बहुत बड़ी मात्रा में बालू भी बहकर निचली धारा वाले क्षेत्र में पहुंचती है। कुछ बालू ऊपरी धाराओं में चट्टानों के बीच भी फंस जाती है। रेत बांध (सैंडडैम) प्राकृतिक रेतीले जल

भंडारण स्थानों में कृत्रिम तौर पर सुधार करके बनाए जाते हैं ताकि अधिक से अधिक मात्रा में भूजल पुनर्भरण किया जा सके और उस जल को प्रयोग में लाया जा सके।

रिसन तालाब या पारगमन तालाब

ये खुले और बड़े तालाब होते हैं जिनको या तो खोदा जाता है या यह भूमि का ऐसा हिस्सा होता है जो स्वयं उच्च स्थलों से घिरा रहता है। इसका कुल क्षेत्र प्रायः 15,000 घन मीटर तक होता है। ये तालाब प्रायः एक से चार मीटर तक गहरे होते हैं, लेकिन तालाब का आकार जल धारण क्षेत्र और एक साल में उसके भराव की क्षमता को देखते हुए तय किया जाना चाहिए। इनमें वर्षा जल संरक्षण किया जाता है, लेकिन इसका प्रमुख लक्ष्य होता है इस जल को जलाशयों तक पहुंचाना, ताकि वहां से यह बोर होल, कुओं और आसपास की जलधाराओं तक पहुंचाया जा सके। इनका निर्माण ऐसे इलाकों में किया जाता है जहां तालाब का आधार पारगमन क्षमता वाला हो और जहां इसकी मदद से आसपास के इलाकों का भूजल पुनर्भरण किया जा सके।

अधोभौमिक जल निकास नाली या अंडर ग्राउंड पाइप लाइन (UGPL) प्रणाली

पहाड़ी से नीचे बहने वाली बारहमासी धारा को ग्रामीणों द्वारा पीवीसी पाइप (आंतरिक व्यास 150 मिमी) से सीधा खेतों तक ले जाया जाना चाहिए। इससे जल संवहन दक्षता को 80–90 प्रतिशत तक बढाया जा सकता है, जिसके कारण जल की जो बचत होगी वह भी एक प्रकार से जल संचयन ही कहा जायेगा।

आई.ए.आर.आई. परिसर में वर्षा जल संरक्षण

परिसर में विभिन्न स्थानों पर वर्षा जल संचयन तालाबों एवं रिचार्ज शाफ्टों का निर्माण किया गया है। इन संरचनाओं द्वारा संस्थान के सतही अपवाह को रोककर भूजल पुनर्भरण एवं उपयोग किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त संस्थान ने सिंचाई के लिए घरेलू अपशिष्ट जल के उपचार के लिए एक प्रणाली विकसित की है। इस तकनीक को देशभर के अन्य संस्थानों में भी स्थानांतरित किया जा रहा है।

पारम्परिक जल संचयन संरचनाएं

हमारे देश के पूर्ववर्ती लोगों ने अपनी–अपनी स्थलाकृति, वर्षा, अपवाह जल की उपलब्धता, मृदा की अधिशोषण क्षमता इत्यादि का गहराई से अध्ययन करके विभिन्न प्रकार की संरचनाओं के निर्माण में पारंगतता प्राप्त कर ली थी। जल संचयन संरचनाएं सबसे उपयुक्त व निम्नतम स्थानों पर बनाई जाती थीं। इसके अतिरिक्त समय–समय पर जल संचयन संरचनाओं के रख रखाव की विधियों का भी सम्यक ध्यान दिया जाता था तथा जल को किसी भी प्रकार से दूषित न होने देने के लिए नियमावली बनाये गयी थी जिसे धर्म से जोड़ दिया गया था। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में पायी जाने वाली पारम्परिक जल संचयन संरचनाओं का वर्णन निम्नलिखित है:

कुण्ड

सामान्य तौर पर कुण्ड का अर्थ भूगर्भीय टैंक होते हैं, जिनका विकास सूखे की समस्या के समाधान के लिये किया गया था। जो धार्मिक स्थान हैं, वहाँ कुण्ड पवित्र माने जाते हैं और उनमें प्रदूषण फैलाने की मनाही होती है जैसे गौरी कुण्ड, सीता कुण्ड, ब्रह्म कुण्ड इत्यादि। कई बार ऐसे कुण्ड पवित्र नदियों के किनारे अपने आप निर्मित हो जाते हैं अथवा विभिन्न काल खण्डों में व्यक्तियों के प्रयासों से स्थापित किये गए हैं। प्राचीन काल में भारत में कुण्ड जल उपलब्धता के प्रमुख स्रोत थे।

सीढ़ीदार कुएँ

यह एक ऐसी भूमिका संरचना है जो मात्र भारत में पाई जाती है। यह भारत के शुष्क क्षेत्रों में काफी लोकप्रिय रही है। इसका उपयोग वर्षाजल संचयन एवं पीने के पानी की निरंतर उपलब्धता के लिये किया जाता है। इनके विभिन्न क्षेत्रों में उनके नाम अलग–अलग हैं जैसे काव, वावड़ी, बावरी, बादली बावड़ी एवं बावली। उदाहरण स्वरूप अहमदाबाद के पास अडालज बावा है जिसमें 6 मंजिलें हैं। यह एक मंदिर है जो एक कुएँ पर जाकर समाप्त होता है। इनकी मंदिरनुमा संरचना एवं जल उपलब्धता के लिये महत्ता को ध्यान में रखते हुए इन्हें जलमंदिर भी कहा जाता है। इसी प्रकार, नई दिल्ली में हैली रोड पर स्थित अग्रसेन की बावली जिसकी लम्बाई 60 मीटर और चौड़ाई 15 मीटर है, एक ऐतिहासिक स्मारक और पत्थरों और चट्टानों के विभिन्न वर्गीकरणों का एक प्राचीन जल भंडार है।

जल महल

भारतीय राजाओं ने बड़ी–बड़ी जल संचयन संरचनाओं के बीचों–बीच महल बनवाये थे जिससे अतिशय गर्मी के मौसम में जल महल में वाष्पोत्सर्जन तथा बहने वाली गर्म हवा के मेल से आने वाली हवा ठंडी हो कर महल में प्रवेश कर सके, जैसे– जयपुर के आमेर स्थित। इसी प्रकार की संरचनाएं भारत के अन्य प्रदेशों में भी पाई जाती हैं। यह जल संचयन के उत्कृष्ट उदाहरण हैं जिनका जल वर्षा काल के बाद नगर के विभिन्न कार्यों हेतु प्रयुक्त किया जाता था।

बावड़ी / बेर

ये सामाजिक कुएँ हैं, जिनको मुख्यतः पीने के पानी के स्रोत के रूप में उपयोग में लाया जाता था। इनमें पानी बहुत लम्बे समय तक बना रहता है, क्योंकि वाष्पीकरण की दर बहुत कम होती है।

पोखर, तालाब / बन्धी, झील

पोखर एक प्रकार का बड़ा जल संचयन क्षेत्र होता है जिसमें वर्षा ऋतु में जल एकत्रित किया जाता है तथा वर्षा के बीतने पर रबी के मौसम में जल निष्कासन के उपरांत फसल उगाई जाती है। कई स्थानों पर इनके अंदर भी कुएँ खोदे जाते थे ताकि भूमिगत जलाशयों को रिचार्ज किया जा सके। मध्यम

आकार के जलाशयों को बन्धी और तालाब कहा जाता है तथा बड़े जलाशयों को झील कहा जाता है। यह संरचना भारत के लगभग सभी राज्यों के प्रत्येक गाँव में प्राकृतिक या कृत्रिम रूप में पायी जाती है।

जोहड़

हरियाणा में तालाबों को 'जोहड़' कहते हैं परन्तु यह जल संचयन संरचना छोटी नालियों के आगे रोक बांध अथवा चारों ओर मिट्टी के बाँध बना कर बीच में जल को रोकने की प्रविधि पर आधारित होती है। कहीं–कहीं पर खेतों में 'पाल' बनाकर खेती की जाती थी, पाल एक प्रकार के छोटे– छोटे चेक डैम होते हैं तथा जिनका उपयोग वर्षाकाल में जल को एकत्र करने और भूजल की स्थिति को और उत्तम बनाने का काम लिया जाता था।

झालर या झालारा

झालर एक प्रकार की कृत्रिम जल संचयन संरचना या टैंक है जिसका उपयोग धार्मिक एवं सामाजिक कार्यक्रमों में होता है। गुजरात, राजस्थान और कर्नाटक में इन पारंपरिक जल संरक्षण संरचनाओं की संख्या सबसे अधिक है। ये लगभग आयताकार होते हैं। इनके चारों ओर या तीन ओर मेंड़ बंदी की जाती है। यह एक सतही जलस्रोत है जिनकी सहायता से आस–पास की धाराओं एवं भूगर्भीय स्रोतों के जल की प्रतिपूर्ति होती है, परन्तु इसके जल का उपयोग पीने के लिये नहीं करते हैं।

टंका

यह एक छोटा टैंक ही होता है जिसमें पानी को एकत्र किया जाता है। राजस्थान में इसे टंका कहा जाता है। यह भूमि के अंदर होता है और इसकी दीवारों पर चूना भी लगाया जाता है। इसमें सामान्य तौर पर वर्षाजल इकट्ठा किया जाता है। इसके अतिरिक्त बड़े टैंकों का उपयोग बाढ़ को रोकने, मृदा अपरदन रोकने तथा भूजल स्रोतों को प्रतिपूरित (रिचार्ज) करने के लिये किया जाता था।

इरिस

दक्षिण भारतीय टैंकों को 'इरिस' भी कहते हैं। इरिस भारत में जल प्रबन्धन के लिये किये गये प्राचीनतम संरचनाओं में एक हैं। दक्षिण भारत में टैंक मंदिर स्थापत्य से सीधे तौर पर जुड़े हैं साथ ही टैंकों का निर्माण सिंचाई सुविधा के लिये भी किया गया था। प्राचीन काल के सभी मंदिरों में टैंक की व्यवस्थाओं को जो न मात्र आगंतुकों को जल उपलब्ध कराते रहे हैं बल्कि भूजल स्तर को भी बनाए रखने के लिये उपयोग में लाया जाता रहा है।

कुहल/खुल

कुहल या खुल, पर्वतीय क्षेत्रों विशेषकर हिमाचल प्रदेश, जम्मू और उत्तराखंड में बनाए जाते हैं। ये एक प्रकार की नहरें होती हैं जिनका उपयोग ग्लेशियर के पिघलने से पानी को गाँवों तक पहुँचाने

के लिये किया जाता है। इसके अलावा खुल का प्रयोग पहाड़ से निकलने वाली प्राकृतिक धाराओं को सिंचाई और पीने के पानी को गाँव या क्षेत्र तक पहुँचाने के लिये किया जाता है।

गड़/आहार–पाइन

असम में राजाओं ने वर्षाजल संरक्षण के लिये तालाब और कुण्ड बनाए थे जिन्हें गड़ कहा जाता है। कई स्थानों पर गड़ का उपयोग नदी के पानी को वितरित (चैनलाइज) करने के लिये किया गया था। गड़ बड़े नाले की तरह होते हैं। गड़ों का उपयोग सिंचाई के साथ–साथ बाढ़ की विभीषिका को रोकने के लिये भी होता है। इस प्रकार की संरचनाओं को पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार प्रांत में आहार–पाइन के नाम से जाना जाता है। इन संरचनाओं में बाढ़ के पानी को खेतों तक पहुंचाने के लिए चौड़े चौड़े नालों को बनाया जाता है जिनमें पानी भरा रहता है और बाढ़ उतरने के बाद उसके मुहाने को बंद कर दिया जाता है। इस जल को अगली फसल के उत्पादन हेतु सिंचाई में प्रयोग में लाया जाता है।

सुरंगम

पश्चिमी घाट के पर्वतीय क्षेत्रों (केरल) में सिंचाई हेतु वर्षा जल के परिचालन के लिए पहाड़ों के बीच से ऐसी सुरंगों का निर्माण किया जाता था जिसके भीतर होकर आया–जाया भी जा सकता था। इन सुरंगों में पर्वत से अवशोषित जल टपक–टपककर जल धारा बन जाती है जिसे किसी जल कुंड में रोककर भविष्य के कार्यों हेतु संरक्षित किया जाता है।

ज़ाबो प्रणाली

ज़ाबो (अपवाह को रोकना) प्रणाली उत्तर–पूर्वी भारत के नागालैंड में प्रचलित है। यह प्रणाली वानिकी, कृषि और पशु देखभाल के साथ जल संरक्षण को जोड़ती है। इसे रूजा प्रणाली के रूप में भी जाना जाता है। वनों की पहाड़ियों पर गिरने वाले वर्षाजल को चैनलों द्वारा एकत्र किया जाता है जो सीढ़ीदार पहाड़ियों पर बनाए गए तालाब जैसी संरचनाओं में बहते पानी को जमा करते हैं। चैनल पशुशाला से भी गुजरते हैं तथा जानवरों के गोबर और मूत्र को इकट्ठा करते हुए अंततः पहाड़ी की तलहटी में धान के खेतों में मिल जाते हैं। धान के खेत में बनाए गए तालाबों का उपयोग मछली पालन और औषधीय पौधों के विकास को बढ़ावा देने के लिए किया जाता है।

बांस ड्रिप सिंचाई प्रणाली

बांस ड्रिप सिंचाई प्रणाली कुशल जल प्रबंधन की एक सरल प्रणाली है जो पूर्वोत्तर भारत में दो शताब्दियों से अधिक समय से प्रचलित है। क्षेत्र के आदिवासी किसानों ने सिंचाई के लिए यह प्रणाली विकसित की है जिसमें बारहमासी झरनों के पानी को विभिन्न आकार और माप के बांस के पाइपों का उपयोग करके खेतों में ले जाया जाता है। कम पानी की आवश्यकता वाली फसलों के लिए यह सबसे उपयुक्त प्रणाली है क्योंकि इसमें पानी की छोटी बूंदें सीधे पौधों की जड़ों तक पहुंचाई जाती हैं। इस प्राचीन प्रणाली का उपयोग खासी और जयंतिया पहाड़ियों के किसान अपनी काली मिर्च की खेती में

ड्रिप–सिंचाई के लिए करते हैं।

हवेली प्रणाली

हवेली प्रणाली मध्य प्रदेश में पाई जाने वाली एक पारंपरिक वर्षा जल संचयन प्रणाली है। इस प्रणाली में जलग्रहण के आधार पर भूमि के ढलान पर 100–300 मीटर लंबे मिट्टी के तटबंध (4–10 मीटर चौड़े और 1–3 मीटर ऊंचाई) का निर्माण किया जाता है तथा इसमें मानसून अवधि के दौरान अतिरिक्त अपवाह को छोड़ने के लिए स्पिलवे सुविधा होने के साथ एक नाली के माध्यम से पानी को निकालने का विकल्प भी होता है। आम तौर पर, हवेली प्रणाली का जलग्रहण 10 से 200 हेक्टेयर तक होता है। जलग्रहण से उत्पन्न अपवाह को मानसून के दौरान इन संरचनाओं में काटा जाता है जो पूरे गांव में उथले खोदे गए कुओं और बोरहोल कुओं का पुनर्भरण करता है। एक बार मानसून के कम होने के बाद (आमतौर पर अक्टूबर के अंत तक), जमा पानी भी निकल जाता है और अवशिष्ट मिट्टी की नमी का उपयोग करके रबी फसलों की खेती के लिए हवेली बेड तैयार किया जाता है। हवेली के पानी का उपयोग नीचे के किसानों द्वारा बुवाई पूर्व सिंचाई में भी किया जाता है। हवेली प्रणाली मानसून के मौसम के दौरान एक जलाशय के रूप में कार्य करती है और मानसून के बाद कृषि क्षेत्रों में परिवर्तित हो जाती है।

भूजल पुनर्भरण एवं प्रबंधन

हमारे देश में हरित क्रांति के माध्यम से कृषि उत्पादन को बढ़ाने में भूजल संसाधन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। राष्ट्रीय स्तर पर सिंचित भूमि के 60% से अधिक भू–भाग पर सिंचाई भूजल द्वारा होती है। वर्षा का अधिकतर जल, सतह की सामान्य ढालों से होता हुआ नदियों में जाता है तथा उसके बाद सागर में मिल जाता है। वर्षा के इस बहुमूल्य जल का भूजल के रूप में संचयन अति आवश्यक है। भूजल, कुएँ, नलकूप आदि साधनों द्वारा खेती और जनसामान्य के पीने हेतु काम आता है। भूजल, मृदा (धरती की ऊपरी सतह) की अनेक सतहों के नीचे चट्टानों के छिद्रों या दरारों में पाया जाता है। उपयोगिता कि दृष्टि से भूजल, सतह पर पीने योग्य उपलब्ध जल संसाधनों के मुकाबले अधिक महत्त्वपूर्ण है। अध्ययनों से पता चला है कि भूजल की उत्पादकता, सतही जल से लगभग डेढ़ से दोगुना अधिक होती है। दुर्भाग्यवश पिछले कुछ दशकों में भूजल के अत्यधिक दोहन और अव्यवस्थित प्रबंधन के कारण देश के अधिकतर हिस्से में भूजल स्तर लगातार गिरता जा रहा है। इन क्षेत्रों में भूजल का दोहन भूजल पुनर्भरण से अधिक है। इसके फलस्वरूप किसानों को अपना सब्मर्सिबिल पम्प हर वर्ष नीचे करना पड़ता है जिसके कारण ऊर्जा की खपत भी बढ़ जाती है। इसलिये भूजल का पुनर्भरण और उचित प्रबंधन करना आवश्यक है। भूजल उपयोग की नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे भूजल का वार्षिक दोहन, वार्षिक पुनर्भरण से अधिक न हो।

भूजल पुनर्भरण

भूजल पुनर्भरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सतही जल मिट्टी की उपसतह से होते हुए भूजल स्तर तक पहुंचता है। वर्षा जल का एक भाग वाष्पोत्सर्जन द्वारा वातावरण में वापस चला जाता है, एक भाग सतहीय अपवाह के रूप में क्षेत्र से बाहर होते हुए नदी, नालों और समुद्र में मिल जाता है। एक भाग पुनर्भरण प्रक्रिया द्वारा भूजल स्तर तक पहुंचता है। नियमतः भूजल का दोहन वार्षिक पुनर्भरण से अधिक नहीं होना चाहिए। इसके लिए सतहीय अपवाह को विभिन्न संरचनाओं जैसे तालाबों, बंधियों, बड़े व्यास के कुओं इत्यादि में रोककर भूजल पुनर्भरण को त्वरित किया जाता है, इसे कृत्रिम पुनर्भरण कहा जाता है। उन क्षेत्रों में जहां–जहां भूमि की ऊपरी पर्तों की रिसाव दर कम है, पुनर्भरण नलकूप द्वारा भूजल पुनर्भरण को त्वरित करना चाहिए। शुष्क व अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में, जहां वर्षा कम होती है, खेत–क्यारियों के चारों तरफ पर्याप्त ऊंचाई के मेंड़ बनाकर वर्षा जल को रोका जा सकता है। भूजल पुनर्भरण संरचनाओं का चयन करते समय निम्नलिखित पर ध्यान देना चाहिए:

i. संरचनाओं का चयन भूगर्भीय स्थिति को ध्यान में रखकर करना चाहिए।

ii. सतही अपवाह का आंकलन अवश्य करें, ऐसा करने से सही क्षमता का अनुमान लग जाता है, जो आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

iii. घरों और कल–कारखानों से निकलने वाले जल का पुनर्भरण के लिए प्रयोग करने से पहले गुणवत्ता सुनिश्चित करें। यदि जल की गुणवत्ता ख़राब है तो उचित प्रबंधन पद्धति को अपनाना चाहिए।

iv. नलकूपों द्वारा पुनर्भरण में, छानक पर्तों का सही निर्धारण करें।

v. यदि आवश्यक हो तो एक साथ कई प्रकार की संरचनाएं बनाएं।

भूगर्भीय संरचना के आधार पर अलग–अलग क्षेत्रों की भूजल पुनर्भरण की क्षमता अलग–अलग होती है। अतः भूगर्भीय संरचना के गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। अलग–अलग क्षेत्रों में अध्ययन के आधार पर भूजल पुनर्भरण संरचनाओं का चयन करना होगा।

भूजल का कृत्रिम पुनर्भरण

भूजल के कृत्रिम पुनर्भरण का मुख्य उद्देश्य वर्षा जल को विभिन्न प्रकार की संरचनाओं के माध्यम से होकर भूजल स्तर तक ले जाना होता है। ऐसा करने से सतही अपवाह जो बहकर अन्यत्र चला जाता है उसे कम किया जा सकता है जिससे भूजल स्तर में वृद्धि होती है। कृत्रिम पुनर्भरण द्वारा मृदा के कटाव एवं सूखे के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

गुजरात के सौराष्ट्र में लगातार तीन वर्षों के सूखे के जवाब में 1980 के दशक के अंत में भूजल पुनर्भरण एक जन आंदोलन के रूप में शुरू हुआ। फसलों को बचाने के लिए कुछ किसानों ने बारिश के पानी और आस–पास की नहरों और नालों के पानी को अपने कुओं में मोड़ना शुरू कर दिया। कुछ ही समय में सौराष्ट्र के सात जिलों के हजारों किसानों ने अपने कुओं को पुनर्भरण संरचनाओं में परिवर्तित कर दिया।

दिल्ली सरकार, एक परियोजना के अंतर्गत मानसून के मौसम में यमुना के बाढ़ के पानी को संग्रहित कर भूजल पुनर्भरण का कार्य कर रही है। बाढ़ के पानी के संचयन के लिए यमुना के किनारे 26 एकड़ का एक तालाब बनाया गया है। इसके आसपास भूजल स्तर की निगरानी के लिए 33 पीजोमीटर भी लगाए गए हैं। यह देखा गया है कि वर्ष 2020 और 2021 में क्रमशः 2.9 मिलियन घन मीटर और 4.6 मिलियन घन मीटर भूजल पुनर्भरण किया गया। साथ ही भूजल स्तर में आधा मीटर से ढ़ाई मीटर तक वृद्धि देखी गयी।

कृत्रिम पुनर्भरण की विधियाँ

उप सतही विधियाँ

उप सतही तकनीकों का उद्देश्य उन गहरे जलभृतों का पुनर्भरण करना है जो अपारगम्य/अल्पपारगम्य संरचनाओं से ढके होते हैं एवं जिनसे साधारण अवस्था में सतही जल का रिसाव नहीं हो पाता है। इन गहरे जलभृतों के पुनर्भरण के लिए सबसे अधिक उपयोगी विधियों में सर्वोत्तम विधियां निम्नलिखित हैं:

पुनर्भरण कूप

पुनर्भरण कूप साधारण बोरवेल या नलकूप के ही समान संरचनायें हैं जिनका निर्माण गहरे जलभृतों के पुनर्भरण के लिए होता है। इनमें जल की आपूर्ति गुरूत्व द्वारा या दबाव के अन्तर्गत की जाती है। इस विधि से उन जलभृतों का पुनर्भरण करते हैं जो अति दोहन से असंतृप्त हो गये हों। तटीय क्षेत्रों में भी ताजे जल के जलभृत को समुद्री जल अतिक्रमण से बचाने या रोकने एवं भूधंसाव की समस्या से निजात पाने के लिए इस विधि से पुनर्भरण किया जा सकता है।

गुरुत्वाकर्षण हेडेड पुनर्भरण कूप

विशेष रुप से डिजाइन किये गये इंजेक्शन कूपों के अलावा उपलब्ध कुओं एवं बोरवेल/ट्यूबवेल को भी वैकल्पिक रूप से पुनर्भरण कुओं के रुप में उपयोग में लाया जा सकता है विशेषकर जब जल स्रोत उपलब्ध हो। उन क्षेत्रों में जहाँ भूजल संसाधनों के अति दोहन से उथले कुएँ सूख जाएं या बोरवेल में पिजोमिट्रीक स्तर गहरे हो जाएं अर्थात् जलभृत पर्याप्त रुप से असंतृप्त हो जाएं, मौजूदा भूजल निकास संरचनाएँ उथले या गहरे जलभृत क्षेत्रों के पुनर्भरण के लिए एक लागत प्रभावी तंत्र उपलब्ध कराते हैं।

पुनर्भरण खड्ड एवं शाफ्ट

पुनर्भरण खड्ड एवं शाफ्ट जैसे कृत्रिम पुनर्भरण संरचनाओं का उपयोग सामान्यतः उथले जलभृत जिनका अपारगम्य परतों की वजह से भूजल स्तर एवं सतही जल से कोई संपक्र नहीं होता वहाँ पुनर्भरण हेतु किया जाता है।

पुनर्भरण शाफ्ट

प्रेरित पुनर्भरण

प्रेरित पुनर्भरण में उस जलभृत में जिसकी सतही जल से जलीय संबंध है, पंपिंग द्वारा स्थान रिक्त किया जाता है, ताकि पुनर्भरण संभव हो सके। जैसे ही भूजल में उत्पन्न हुये अवसाद शंकु एवं नदी रिचार्ज सीमा के मध्य संबंध स्थापित होता है नदी का सतही जल जलभृत की दिशा में बहने लगता है और जलभृत का पुनर्भरण करता है। ऐसा होने से जल की गुणवत्ता में सुधार हो जाता है। संचयन कूप एवं रिसाव गेलरी, जिनका उपयोग नदी तल, झील तल एवं जल प्लावित क्षेत्रों से अधिक मात्रा में जलापूर्ति प्राप्त करने के लिए किया जाता है, भी प्रेरित पुनर्भरण के सिद्धांत पर कार्य करते हैं।

संयुक्त विधियाँ

अनुकूल भूजल वैज्ञानिक परिस्थितियों में जलभृत के पुनर्भरण हेतु विभिन्न सतही एवं उप सतही पुनर्भरण विधियों को संयुक्त रुप से उपयोग में लाया जाता है। आमतौर पर अपनाई जाने वाली संयुक्त विधियों के अंतर्गत, शाफ्ट के साथ पुनर्भरण बेसिन, पुनर्भरण खड्ड या शाफ्ट के साथ रिसाव तालाब एवं एक से ज्यादा जलभृतों में बनाये गये प्रेरित पुनर्भरण कूप, जिनसे ऊपरी जलभृत का पानी केसिंग पाइप के छिद्रों से प्रवाहित होकर निचले जलभृत का भी पुनर्भरण करता है।

भूजल प्रबंधन

भूजल की संभावित क्षमता का आंकलन

भूजल की संभावित क्षमता और सिंचाई के लिए उसकी उपलब्धता का आंकलन हमेशा से एक चर्चा का विषय रहा है जिसके लिए समय–समय पर कई प्रयास किए गए हैं। कई प्रयासों के बाद केंद्रीय भूजल बोर्ड ने भूजल आंकलन के लिए प्रणाली विकसित की है। इसको केन्द्रीय जल आयोग से प्राप्त किया जा सकता है। अतः उचित होगा कि इस प्रणाली को प्रयोग करके ग्राम पंचायत, विकासखंड और जिला स्तर पर नियमित रूप से आंकलन हो और उसी के आधार पर भूजल विकास और प्रबंधन किया जाए। वैसे तो भूजल स्तर नापने की दिशा में काफी प्रगति हुई है, परंतु भूगर्भीय संरचना व भूदृश्य की परिवर्तनशीलता को देखते हुए गांव स्तर पर भूजल स्तर नापने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय जल विज्ञान परियोजना के अंतर्गत देशभर में भूजल स्तर निरीक्षण के लिए राष्ट्रीय स्तर पर स्वचालित निरीक्षण यंत्र लगाए जा रहे हैं। आने वाले दिनों में भूजल स्तर निरीक्षण, भूजल का आंकलन और भूजल उपलब्धता के आंकलन में सुधार होगा जो निश्चित रूप से भूजल प्रबंधन और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेगा।

भूजल उपयोग की दक्षता

वर्तमान में भूजल सिंचाई की दक्षता 50% से 60% के आसपास है। किसानों के खेतों में किए गए प्रयोगों से पता चला है कि भूजल सिंचाई दक्षता को 65% से 75% तक बड़ी आसानी से बढ़ाया जा सकता है। ऐसा करने के लिए यह आवश्यक है कि देश में भूजल आधारित क्षेत्रों में सिंचाई हेतु जल की

आपूर्ति पाइप द्वारा की जाए, जिसमें जल को मापने और नियंत्रित करने के लिए आवश्यक उपकरण लगे हों। यह भी प्रयास होना चाहिए कि ऐसी फसलें जिसमें सूक्ष्म सिंचाई पद्धति द्वारा सिंचाई हो सकती है, उन फसलों में इसे अनिवार्य किया जाए। ऐसा होने पर सिंचाई दक्षता को 85% से 90% तक बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त लेजर लेवलिंग द्वारा भी सतही सिंचाई की दक्षता को बढ़ाया जा सकता है।

अदक्ष विधि द्वारा सिंचाई

पाइप नेटवर्क द्वारा सिंचाई

जल की उपलब्धता और सुगमता

भूजल निरंतर उच्च स्तर से निचले स्तर की ओर बहता रहता है। भूजल पर भूमि के मालिक का वास्तविक अधिकार नहीं होता है। भूजल उपयोग की कोई ठोस नीति नहीं होने के कारण जो जितना चाहे उतना भूजल का उपयोग कर सकता है। इस कारण से भूजल का न्यायसंगत वितरण नहीं हो पाता है। ऐसा देखा गया है कि भूजल का उपयोग धनी किसान अधिक करते हैं। धनी किसान अपने पंप को गिरते जल स्तर के साथ नीचे करते रहते हैं। इसके कारण गरीब किसानों के ट्यूबवेल में पानी नीचे चला जाता है और संसाधन ना होने के कारण वह अपना पम्प नीचे नहीं कर पाता है और उसे भूजल उपलब्ध नहीं हो पाता है। यह एक गंभीर समस्या है। इसके लिए एक ठोस नीति की आवश्यकता है।

भूजल की गुणवत्ता

अत्यधिक दोहन के कारण देश के कई भागों में भूजल की गुणवत्ता में निरंतर ह्रास हो रहा है। सघन खेती वाले क्षेत्रों में खाद और अन्य रसायनों के विवेकहीन उपयोग के कारण भूजल में हानिकारक रसायनों जैसे; नत्रजन और विभिन्न प्रकार के कीटनाशक अवशेषों की मात्रा बढ़ रही है। इस कारण कई प्रकार की बीमारियां भी बढ़ रही हैं। जिन क्षेत्रों में एक निश्चित स्तर पर खारा पानी है या समुद्र के किनारे वाले क्षेत्रों में खारे जल के अंतर्वेधन की गंभीर समस्या है, ऐसे क्षेत्रों में मीठे पानी वाले भूजल में खारे पानी के रिसाव को रोकने के लिए ठोस उपाय जैसेः भूजल पुनर्भरण, भूजल का सीमित दोहन

व सतही अपवाह को तालाबों में रोकने जैसी तकनीकों को बढ़ावा देना चाहिए। देश के औद्योगिक क्षेत्रों में औद्योगिक प्रतिष्ठानों एवं कल कारखानों से निकलने वाले प्रदूषित जल को बिना साफ किए हुए जल स्रोतों में छोड़ा जाता है। इससे सतही व भूजल दोनों ही प्रदूषित हो रहे हैं। इसके लिए सरकार ने समय–समय पर नियामक बनाए हैं। इसको गंभीरता से अपनाने की आवश्यकता है। नियम पालन करना सभी उपभोक्ताओं की जिम्मेदारी है, निर्वहन करने से उनका ही लाभ होगा ।

जल की बढ़ती मांग

कृषि या घरेलू या औद्योगिक क्षेत्रों में निरंतर जल की मांग बढ़ रही है। अतः अब जल की मांग को नियंत्रित करने की आवश्यकता है। नई सिंचाई पद्धति, फसल चक्र में सुधार, जनसंख्या नियंत्रण इत्यादि से जल की मांग को नियंत्रित करना पड़ेगा। कल–कारखानों द्वारा उत्सर्जित प्रदूषित जल को साफ करके पुनः उपयोग में लाना पड़ेगा। अध्ययनों से पता चला है कि उचित प्रबंधन से जल के बढ़ती हुई मांग को भी नियंत्रित किया जा सकता है।

नहरी क्षेत्रों में सतही और भूजल का समेकित उपयोग

देश के कई नहर कमांड क्षेत्रों में जलभराव और मृदा लवणता बढ़ रही है। ऐसे क्षेत्रों में सतही और भूजल के समेकित उपयोग की योजना को वैज्ञानिक तरीके से करने की आवश्यकता है। ऐसे क्षेत्रों में जहां भूजल खारा है, उसे उचित मात्रा में नहर जल के साथ सिंचाई के लिए उपयोग किया जा सकता है। सतही और भूजल के समेकित प्रयोग से जल उपयोग की दक्षता एवं फसल उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है।

घरों की छत से वर्षा जल संचयन

जल को संग्रहित करने का एक तरीका छत पर से बहने वाले वर्षाजल का संचयन है। घरों और स्कूलों आदि भवनों की छतों से बहने वाले वर्षा जल को भूमि के अन्दर या टंकियों में एकत्रित किया जा सकता है, ताकि बाद में इसका प्रयोग किया जा सके। छत से जल संग्रहण प्रणाली (रूफ टॉप रेन वाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम) के प्रमुख घटक हैंः छत जलग्रहण, नालियां और निस्पंदन प्रणाली तथा भूजल पुनर्भरण शाफ्ट/खाइयां।

पूसा संस्थान में भूजल पुनर्भरण

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली का परिसर लगभग 475 हेक्टेयर में फैला हुआ है। जिसमें कृषि भूमि उपयोग के अंतर्गत पर्याप्त क्षेत्र (75%) आता है; जहां के क्षेत्र पर विभिन्न प्रकार के प्रयोग और परीक्षण किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त संस्थान के परिसर में कार्यालय, छात्रावास, खेल के मैदान और संकाय के आवासीय भवन भी हैं। संस्थान के कार्यालयों, छात्रावासों एवं अन्य उपयुक्त जगहों पर कृत्रिम पुनर्भरण के लिए पुनर्भरण कुओं का निर्माण किया गया है। कुछ कुओं द्वारा छत से बहने वाले वर्षा जल को भी पुनर्भरण के लिए उपयोग किया जाता है। जल प्रौद्योगिकी केंद्र, नाभिकीय

अनुसंधान केंद्र, जैव प्रौद्योगिकी केंद्र, निदेशालय जैसे प्रमुख भवनों की छत से रूफ टॉप रेनवाटर हार्वेस्टिंग प्रणाली, शीर्ष जल संचयन प्रणाली के माध्यम से भूजल पुनर्भरण किया जा रहा है।

जल प्रौद्योगिकी केंद्र भवन

वर्षा जल संचयन चैम्बर

संचयन टैंक + पुनर्भरण शाफ़्ट

भूजल पुनर्भरण हेतु कुछ सावधानियाँ

1. मात्र छतों पर गिरने वाले जल को ही सीधे एक्विफर में रिचार्ज कराया जाये।
2. यथासंभव रिचार्ज पिट/ट्रेंच विधियों को ही प्रोत्साहित किया जाये।
3. रिचार्ज परियोजना में किसी तरीके के प्रदूषित तत्व भूगर्भ जल में न पहुँचे।
4. छतों को साफ रखा जाये और किसी प्रकार के रसायन, कीटनाशनक न रखे जाये।
5. जल प्लावन से प्रभावित क्षेत्रों में रिचार्ज विधा न अपनाई जाये।
6. वर्षाजल संचयन एवं रिचार्ज सिस्टम के निर्माण के साथ ही उसके आस–पास के क्षेत्र में वृक्षारोपण किया जाये।
7. वन विभाग के नियंत्रणाधीन छोटी पहाड़ियों तथा वन क्षेत्र में वृहद स्तर पर कंटूर बंध व वृक्षारोपण का कार्य किया जाये।
8. उपलब्ध परंपरागत जलस्रोतों की डिसिल्टिंग व मरम्मत का कार्य कराया जाये।
9. सूखे कुँओं की सफाई करके उन्हें रिचार्ज सिस्टम के रूप में प्रयोग में लाया जाये।

जल संरक्षण प्रौद्योगिकी का कार्यान्वयन

आज भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में जल उपलब्धता की समस्या विकराल रूप ले रही है। इस समस्या के समाधान हेतु विभिन्न राष्ट्रों की सरकारें तरह–तरह के उपाय कर रही हैं। भारत सरकार भी राष्ट्रीय स्तर पर जल शक्ति मंत्रालय के माध्यम से जल सुरक्षा के लिए दीर्घकालिक समाधान, लोक सहभागिता के माध्यम से साधने में जुटी है। जलग्रहण क्षेत्र पर आधारित विभिन्न परियोजनाओं के अध्ययनोपरांत यह निष्कर्ष निकला कि 500–1000 हेक्टेयर क्षेत्रफल में एक गांव या कई छोटे–छोटे गांवों के समूह को प्रबंधन के लिए सक्रिय रूप से भागीदार बनाया जाना चाहिए। इसी स्तर पर जलग्रहण क्षेत्र विकास समिति की स्थापना हो। इसमें अधिकतम भागीदारी ग्रामवासियों तथा कृषकों की ही हो। आवश्यकतानुसार विभिन्न अनुसंधान संस्थानों, प्रांतीय कृषि विश्वविद्यालयों तथा राज्य सरकारों के तत्संबंधित विभागों का मार्गदर्शन लेते हुए क्रियान्वयन में सहयोग लिया जाय।

लोक सहभागिता से जलापूर्ति समस्या का निवारण

जल संसाधनों के संरक्षण एवं उचित प्रबन्धन के लिए एकमात्र सही विकल्प गाँव स्तर पर लोक सहभागिता के माध्यम से छोटे, मझोले और बड़े तालाबों तथा अन्य जल संरक्षण संरचनाओं का निर्माण करना है। प्रत्येक गाँव में छोटे–छोटे तालाबों एवं पोखरों से वर्षा उपरान्त भूमि सतह पर जो जल प्रवाहित होता है, उसका बहुत ही कम समय और कम खर्च में संचयन किया जा सकता है। सैद्धान्तिक रूप से प्रयास ऐसे होने चाहिए कि इकाई क्षेत्र में होने वाली वर्षा तथा उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाला जल अपवाह उस क्षेत्र के परिधि से बाहर न जाने पाए। जनशक्ति के सामर्थ्य से प्रत्येक जिले में सभी जल संरक्षण पद्धतियों का प्रयोग किया जा सकता है। इससे निकट भविष्य में भारी मात्रा में जल संरक्षण की सतह पर जल उपलब्धता में वृद्धि ही नही, बल्कि भूजल संभरण (रिचार्ज) को भी बढ़ाया जा सकता है जिसे हम जल की भविष्य निधि भी कह सकते हैं और यह जल के लिए जब भी आपातकाल की स्थिति हो, उपयोग में लाया जा सकता है।

जल संरक्षण हेतु सरकारी प्रयास

जल संरक्षण, जलग्रहण क्षेत्र विकास और सिंचाई के लिए संचित जल के प्रबंधन तथा जल उपयोग दक्षता और उनके कार्यान्वयन में वृद्धि पर सरकार द्वारा शुरू किए गए विभिन्न कार्यक्रम कालानुक्रमिक क्रम में आगे दर्शाया गया है।

समन्वित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम

समन्वित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम, पर्यावरण और वन मंत्रालय द्वारा 1989–90 से लागू किया गया था, और 1992 में ग्रामीण विकास मंत्रालय को हस्तांतरित कर दिया गया था। इस कार्यक्रम के कार्यान्वयन में मूल दृष्टिकोण वर्ष 1995 में संशोधित किया गया था जब वाटरशेड दृष्टिकोण के माध्यम

से बंजर भूमि के विकास के लिए वाटरशेड विकास के दिशानिर्देश लागू हुए थे। कार्यक्रम का मूल उद्देश्य देश में बंजर भूमि को सूक्ष्म–जलग्रहण क्षेत्र उपचार योजनाओं के आधार पर एकीकृत तरीके से विकसित करना है। ये योजनाएँ भूमि की क्षमता, निर्माण–स्थल की स्थिति और लोगों की स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार की जाती हैं। इसके अलावा इस योजना का उद्देश्य सभी चरणों में बंजर भूमि विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी को बढ़ाने के साथ ग्रामीण रोजगार को भी बढ़ावा देना है। इससे पहले सूखा संभावित क्षेत्र कार्यक्रम और मरुस्थल विकास कार्यक्रम वर्ष 1987 में ग्रामीण क्षेत्रों और रोजगार मंत्रालय द्वारा लागू किया गया था।

बारानी क्षेत्रों के लिए राष्ट्रीय वाटरशेड विकास कार्यक्रम

यह कार्यक्रम कृषि मंत्रालय के कृषि और सहकारिता विभाग द्वारा वर्ष 1991 में शुरू किया गया था। इस योजना का उद्देश्य बारानी क्षेत्रों में वाटरशेड के आधार पर समग्र विकास करना तथा प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन जैसे मिट्टी और जल संरक्षण, रन–ऑफ प्रबंधन, जल संचयन, ड्रेनेज लाइन ट्रीटमेंट इत्यादि करना है जिससे सिंचित और बारानी क्षेत्रों के बीच क्षेत्रीय असमानता को कम किया जा सके।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)

महात्मा गांधी रोजगार गारंटी अधिनियम 2005 (नरेगा, जिसे बाद में सितंबर 2005 में पारित ”महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम” या मनरेगा के रूप में नाम दिया गया) का उद्देश्य कम से कम 100 दिनों का वेतन प्रदान करके ग्रामीण क्षेत्रों में आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। प्रत्येक घर में एक वित्तीय वर्ष में रोजगार मिलता है जिनके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक श्रम करते हैं, और स्थायी संपत्ति जैसे सड़क, नहर, तालाब और कुएं बनाते है। मनरेगा के अंतर्गत जल संरक्षण और प्रबंधन के लिए देश के विभिन्न राज्यों में सफल प्रयास किए गए हैं। जैसे कि राजस्थान में ‘मुख्यमंत्री जल स्वालंबन अभियान’, झारखंड में ’डोभा’ या फार्म तालाबों का निर्माण, तेलंगाना में ‘मिशन ककटिया’, आंध्र प्रदेश में ’नीरू चेट्टू’, मध्य प्रदेश में ‘कपिल धारा’, कर्नाटक में ‘बोरवेल पुनर्भरण’ इत्यादि।

समेकित जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन कार्यक्रम

यथार्थवादी और समग्र रूप से नई पीढ़ी के जलग्रहण क्षेत्रों के उपचार और विकास के लिए समन्वित बंजर भूमि विकास कार्यक्रम और बारानी कृषि के लिए राष्ट्रीय वाटरशेड विकास कार्यक्रम को मिलाकर राष्ट्रीय बारानी क्षेत्र प्राधिकरण के माध्यम से भारत सरकार ने जलग्रहण क्षेत्रों की विकास परियोजनाओं के कार्यान्वयन के लिए सामान्य दिशानिर्देश, 2008 से क्रियान्वित किये जा रहे हैं।

राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम

पीने के पानी के मुद्दों का समाधान करने के लिए, ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम और दिशानिर्देशों को राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम के रूप में वर्ष 2009 में संशोधित किया गया, जिसका लक्ष्य ग्रामीण भारत में स्थायी पेयजल सुरक्षा सुनिश्चित करना तथा ग्राम पंचायत स्तर पर प्रारंभिक जल परीक्षण

की क्षमता विकसित करके पानी की गुणवत्ता में सुधार करना है। यह कार्यक्रम वर्तमान में जल जीवन मिशन कार्यक्रम में विलय हो गया है।

वर्षा सिंचित क्षेत्र विकास कार्यक्रम

वर्षा सिंचित क्षेत्र विकास कार्यक्रम, उत्पादकता बढ़ाने और जलवायु परिवर्तन से जुड़े जोखिम को कम करने के लिए, एकीकृत खेती प्रणाली पर केंद्रित है। यह प्रणाली जो वर्ष 2011–12 के दौरान शुरू हुई थी के तहत, फसलों/फसल प्रणाली को बागवानी, पशुधन, मत्स्य, कृषि–वानिकी, सामान्य कृषि इत्यादि गतिविधियों के साथ एकीकृत किया जाता है ताकि किसानों को न केवल आजीविका को बनाए रखने के लिए कृषि आय को अधिकतम करने में सक्षम बनाया जा सके, बल्कि सूखे, बाढ़ या बाढ़ के प्रभावों को भी कम किया जा सके।

स्वच्छ भारत मिशन

स्वच्छ भारत मिशन को राष्ट्रीय आंदोलन के रूप में देशभर में 2014 को लॉन्च किया गया था। भारत सरकार द्वारा स्वच्छ भारत अभियान सबसे महत्वपूर्ण स्वच्छता अभियान है। इस कार्यक्रम के तहत जल उपचार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। घरों से निकलने वाले गंदे पानी को उपचारित करके पुनः उपयोग किया जा सकता है, जिसके लिए जल प्रौद्योगिकी केंद्र, आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली ने 2.2 मिलियन लिटर प्रति दिन क्षमता का एक सीवेज उपचार संयंत्र अपने परिसर में विकसित किया है जो सुचारू रूप से काम कर रहा है। स्वच्छ भारत मिशन के तहत जल प्रौद्योगिकी केंद्र के मार्गदर्शन में 9 अन्य सीवेज उपचार संयंत्र देश के विभिन्न स्थानों: कपूरथला (पंजाब), गिलोट (राजस्थान), कासगंज (उत्तर प्रदेश), रसूलपुर (हरियाणा), शिकोहपुर (हरियाणा), बेंगलुरु (कर्नाटक), गोवा, जोबनेर (राजस्थान), मथुरा (उत्तर प्रदेश) में भी लगाये गए हैं।

राष्ट्रीय सतत कृषि मिशन

यह योजना कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा वर्ष 2014 में लॉन्च की गई। इस योजना का उद्देश्य कृषि को अधिक उत्पादक, टिकाऊ/सतत, लाभकारी और जलवायु अनुकूल बनाना, मिट्टी और नमी का संरक्षण, मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन, कुशल जल प्रबंधन प्रथाओं को अपनाना, वर्षा आधारित प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देना तथा अन्य मिशनों के सहयोग से किसानों और हितधारकों की क्षमताओं का विकास करना है।

नमामि गंगे परियोजना

केंद्र सरकार ने 2014 में गंगा नदी के प्रदूषण को रोकने और नदी को पुनर्जीवित करने के लिए 'नमामि गंगे' नामक एक एकीकृत गंगा संरक्षण मिशन शुरू किया। इस योजना का क्रियान्वयन केन्द्रीय जल संसाधन, नदी विकास और गंगा कायाकल्प मंत्रालय द्वारा किया जा रहा था जो अब जल शक्ति मंत्रालय की देख–रेख में हो रहा है। इस परियोजना के अंतर्गत नदी की सतह की सफाई, नदी में

प्रवेश करने वाले नगरपालिका और औद्योगिक प्रदूषण को रोकने, नदी को पर्याप्त प्रवाह प्रदान करने इत्यादि कार्य किये जा रहे हैं। इसके अलावा कार्यक्रम के तहत जैव–विविधता संरक्षण, वनरोपण और जल गुणवत्ता की निगरानी भी की जा रही है।

अटल मिशन (अमृत)

भारत सरकार ने कायाकल्प और शहरी परिवर्तन के लिये अटल मिशन फॉर रिजुवेनेशन एंड अर्बन ट्रांसफॉर्मेशन (अमृत) की शुरुआत वर्ष 2015 में की। इस योजना का मुख्य उद्देश्य प्रत्येक घर को पाइप लाइन द्वारा जलापूर्ति एवं सीवर कनेक्शन उपलब्ध कराना है। इसके अतिरिक्त इस योजना में हरियाली अच्छी तरह से बनाए रखते हुए खुले स्थानों को विकसित करना, पार्कों का सौंदर्यीकरण तथा शहरी परिवहन का विकास भी शामिल है। इस योजना के तहत सभी के जीवन की गुणवत्ता में सुधार के प्रयास किये जा रहे हैं। यह मिशन तभी फलीभूत होगा जब सभी जागरूक नागरिक जल संचयन को बढ़ाने में अपनी सेवाएं देंगे।

जल क्रांति अभियान

भारत के जल संसाधन, नदी विकास और गंगा कायाकल्प मंत्रालय जो वर्तमान में जल शक्ति मंत्रालय है द्वारा वर्ष 2015 के दौरान जल क्रांति अभियान (या जल आंदोलन पहल) नाम से एक नया कार्यक्रम आरम्भ किया गया। परियोजना के मुख्य उद्देश्य, गाँवों में पानी को पहुँचाना, जमीनी स्तर पर जन सहयोग या भागीदारी को मजबूत करना और ग्रामीण–स्तर पर बढ़ावा देना, पारंपरिक और आधुनिक ज्ञान तथा संसाधनों के संरक्षण के लिए मौजूद प्रथाओं को अपनाना है। भारत सरकार ने इस विषय पर जागरूकता बढ़ाने के लिए गैर–सरकारी संगठनों, शैक्षणिक संस्थानों, नीति निर्माताओं और नागरिकों को एक साथ शामिल किया है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना वर्ष 2015 से कृषि, सहकारिता और किसान कल्याण विभाग द्वारा 'हर खेत को पानी' और 'प्रति बूंद अधिक फसल' के आदर्श वाक्य के साथ लागू की गई है, जिसका उद्देश्य सिंचाई आपूर्ति श्रृंखला में शुरुआत से अंत तक समाधान प्रदान करना अर्थात जल स्रोत, वितरण नेटवर्क और खेत स्तर के अनुप्रयोग करना है। यह योजना न केवल सुनिश्चित सिंचाई के लिए स्रोत बनाने पर ध्यान केंद्रित करती है, बल्कि हर प्रकार से जल संचय और जल सिंचन के माध्यम से सूक्ष्म स्तर पर वर्षा जल का संरक्षण करके सुरक्षात्मक सिंचाई भी करती है। इस योजना के तहत यदि किसान द्वारा सिंचाई के उपकरण खरीदे जाते हैं तो उनको सब्सिडी भी प्रदान की जाती है। सरकार द्वारा इस योजना के माध्यम से ड्रिप सिंचाई, स्प्रिंकलर सिंचाई आदि को भी बढ़ावा दिया जाता है जिससे कि खेतों को सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध हो सके।

जल जीवन मिशन

जल जीवन मिशन वर्ष 2015 मे लांच किया गया था जिसके अंतर्गत जल शक्ति मंत्रालय के पेयजल और स्वच्छता विभाग, ग्रामीण भारत के सभी घरों में 2024 तक हर घर को नल से जल उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित है। कार्यक्रम अनिवार्य तत्वों के रूप में स्रोत स्थिरता उपायों को भी लागू करता है, जैसे कि पुनर्भरण और पुनः उपयोग, अपशिष्ट अथवा ग्रे वाटर मैनेजमेंट, जल संरक्षण, वर्षा जल संचयन आदि–आदि। जल जीवन मिशन पानी के लिए एक सामुदायिक दृष्टिकोण पर आधारित है और इसमें मिशन के प्रमुख घटक के रूप में व्यापक सूचना, शिक्षा, संचार और प्रचार शामिल हैं।

आकांक्षी ज़िला कार्यक्रम

वर्ष 2018 में शुरू हुए इस कार्यक्रम का उद्देश्य देश के सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े ज़िलों की पहचान कर उनके समग्र विकास में सहायता करना है। इस कार्य हेतु देश के 28 राज्यों से 115 ज़िलों की पहचान की गई थी। यह कार्यक्रम मुख्यतः पाँच विषयों (1) स्वास्थ्य एवं पोषण, (2) शिक्षा, (3) कृषि एवं जल संसाधन, (4) वित्तीय समावेश एवं कौशल विकास और (5) बुनियादी आधारभूत ढाँचे पर केंद्रित है।

जल शक्ति अभियान

जल शक्ति अभियान 2019 में जल शक्ति मंत्रालय द्वारा शुरू किया गया था। यह भारत सरकार और राज्य सरकारों के विभिन्न मंत्रालयों के सहयोग से देश में जल संरक्षण और जल सुरक्षा के लिए एक अभियान है। अभियान का ध्यान पानी की कमी वाले जिलों और ब्लॉकों पर केन्द्रित है। जल संरक्षण के महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं: (i) जल संरक्षण और वर्षा जल संचयन, (ii) पारंपरिक और अन्य जल निकायों / टैंकों का नवीनीकरण, (iii) पानी का पुनः उपयोग और संरचनाओं का पुनर्भरण, (iv) वाटरशेड विकास और (v) वनीकरण।

अटल भूजल योजना

जून 2018 में, विश्व बैंक बोर्ड ने इस योजना को मंजूरी दी और यह विश्व बैंक द्वारा वित्त पोषित है। अटल भूजल योजना (या अटल जल) वर्ष 2019 में केंद्र सरकार द्वारा जल जीवन मिशन के तहत शुरू की गई एक भूजल प्रबंधन योजना है। इस योजना का उद्देश्य भारत के सात राज्यों गुजरात, हरियाण, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में भूजल प्रबंधन में सुधार करना है। इस योजना के अंतर्गत लगभग 78 जिलों और 8350 ग्राम पंचायतों को प्रभावित करते हुए सामुदायिक भागीदारी के इन राज्यों के माध्यम से भूजल प्रबंधन में सुधार किया जाएगा। योजना की अवधि 2020 से 2025 तक है तथा बजट 6000 करोड़ रुपये है।

कैच द रेन अभियान

राष्ट्रीय जल मिशन अभियान 'कैच द रेन' की शुरुआत वर्ष 2021 में की गई। इसका उद्देश्य वर्षा जल जहाँ भी गिरे, जब भी गिरे, उसे एकत्रित करना है। इस अभियान के अंतर्गत, रोक बांध (चेक डैम), जल संग्रह गड्ढा (वाटर हार्वेस्टिंग पिट), छत से जल का संग्रह (रूफटॉप जल संचयन संरचनाएं) आदि बनाने के लिए कार्य योजना बनाई गयी है। भंडारण क्षमता को बढ़ाने के लिए अतिक्रमणों और टैंकों की गाद के निष्कासन (डी–सिल्टिंग), जल मार्गों के अवरोधों को हटाना (चैनलों में अवरोधों को हटाना जो जलग्रहण क्षेत्रों आदि से उनके लिए पानी लाते हैं); सीढ़ीदार कुओं की मरम्मत और जलभराव वाले कुओं और अनुपयोगी कुओं का लोगों की सक्रिय भागीदारी से पानी डालकर उपयोग करना इत्यादि पर ध्यान दिया गया है। इन गतिविधियों को सुविधाजनक बनाने के लिए, राज्यों से अनुरोध किया गया है कि वे प्रत्येक जिले के कलक्ट्रेट / नगर पालिका या ग्राम पंचायत कार्यालयों में "वर्षा केंद्र" खोलें।

मिशन अमृत सरोवर

मिशन अमृत सरोवर की शुरुआत वर्ष 2022 में हुई जिसका उद्देश्य सतही और भूमिगत जल की उपलब्धता को बढ़ाने के लिए देश के प्रत्येक जिले में कम से कम 75 तालाबों का "निर्माण या विकास" करना है। इस मिशन के अंतर्गत प्रत्येक तालाब में कम से कम 1 एकड़ का जल–क्षेत्र होगा जिसमें लगभग 10,000 घन मीटर तक की जल धारण क्षमता होगी। इस मिशन का लक्ष्य लोगों की भागीदारी द्वारा तालाबों का निर्माण हर हाल में 15 अगस्त 2023 तक पूरा करना है।

संग्रहीत जल का उपयोग

पिछले अध्याय में वर्णित जल संरक्षण और भूजल पुनर्भरण की विभिन्न तकनीकों के माध्यम से संग्रहीत जल को कुशलतापूर्वक उपयोग करने की आवश्यकता है और साथ ही उचित सिंचाई समय–सारणी को अपनाना चाहिए। लेकिन यह देखा गया कि अनुचित उपयोग दक्षता यानी सिंचाई के परम्परागत तौर– तरीकों से वितरण और भंडारण छमता में कमी आई है। आज चारों ओर इस बात पर बल दिया जा रहा है कि जल एक अमूल्य संसाधन है; अतः यह अत्यंत आवश्यक होगा कि सिंचाई जल के मापन की व्यवस्था एवं व्यावहारिक मूल्य का निर्धारण हो। इसलिए, जल उपयोग दक्षता को बढ़ाने के लिए, माप उपकरण और स्वचालित प्रणाली की उचित स्थापना के साथ सूक्ष्म सिंचाई जैसे आधुनिक सिंचाई विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए। जलोपयोग दक्षता वृद्धि के फलस्वरूप जो पानी की अतिरिक्त बचत होगी, उससे असिंचित खेती को सिंचित खेती में परिणत किया जा सकेगा। सिंचाई पद्धतियों जैसे स्प्रिंकलर और ड्रिप सिंचाई को बढ़ावा देने के लिए समुचित प्रारंभिक राशि आवंटित करने के साथ सूक्ष्म सिंचाई निधि (इएमएफ) का सृजन किया गया और इस कार्य को नाबार्ड को सौंपा गया जिसे सभी राज्यों में कार्यान्वित किया जा रहा है।

सूक्ष्म सिंचाई पद्धतियाँ

वैज्ञानिकों ने निरंतर अनुसंधान द्वारा ऐसी सिंचाई विधियाँ विकसित की हैं, जिनसे जल व उर्जा की न केवल बचत होती है, बल्कि कृषि उपज भी अधिक प्राप्त होती है। ये पद्धतियाँ हैं– फव्वारा (स्प्रिंकलर) एवं बूँद–बूँद (ड्रिप) सिंचाई प्रणाली। फव्वारा एवं ड्रिप सिंचाई पद्धतियों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि जल का ह्रास नहीं होता, क्योंकि जल पाइप द्वारा प्रवाहित होता है तथा फव्वारा या बूँद–बूँद रूप में दिया जाता है। इन पद्धतियों से 75 से 95 प्रतिशत तक जल खेत में फसल को मिलता है, जबकि प्रचलित सतही विधियों में 40 से 60 प्रतिशत ही फसल को मिल पाता है। इतना ही नहीं फव्वारा एवं ड्रिप सिंचाई पद्धतियों की खरीद पर सरकार 50 से 75 प्रतिशत तक अनुदान भी देती है। तालिका 1 विभिन्न सिंचाई पद्धतियों में विभिन्न फसलों में पानी की आवश्यकता का विवरण दिया गया है, जिससे विदित होता है कि इस पद्धति से 30 से 50 प्रतिशत तक जल की बचत व ड़ेढ से दो गुना अधिक पैदावार मिलती है। बूँद–बूँद सिंचाई थोड़ी महंगी है, अतः दो पंक्तियों के बीच एक ड्रिप लाइन 1.20 से 1.50 मीटर की दूरी पर डालने से 50 प्रतिशत खर्चा कम किया जा सकता है। इस विधि द्वारा लवणीय जल भी सब्जियों में दिया जा सकता है तथा साथ ही भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाए रख सकते हैं।

मटर में फव्वारा सिंचाई

क) शिमला मिर्च

ख) फूल गोभी

ग) मूंगफली

घ) गेहूं

ड्रिप सिंचाई की व्यवस्था

संस्थान के फार्म पर किए गए प्रयोगों के आधार पर सतही और ड्रिप सिंचाई विधियों के तहत सिंचाई जल की आवश्यकता के आंकड़े

फसल और सिंचाई विधि	कुल फसल पानी की आवश्यकता (सिंचाई+प्रभावी वर्षा) (मिमी.)	सिंचाई पानी की आवश्यकता (मिमी.)
मक्का (खरीफ) – सतही सिंचाई	550–600	300–350
मक्का (खरीफ) – ड्रिप सिंचाई	450–470	240–260
गेहूं – सतही सिंचाई	350–400	300–350
गेहूं – ड्रिप सिंचाई	275–325	225–275
चावल– सतही सिंचाई	2300–2600	2000–2300
चावल– ड्रिप सिंचाई	1100–1300	1400–1600
मूंगफली (गर्मी)– ड्रिप सिंचाई	380–450	300–400
मूंगफली (खरीफ)– ड्रिप सिंचाई	310–325	100–150
सरसों– सतही सिंचाई	175–225	125–150
मूंग (गर्मी)– ड्रिप सिंचाई	230–280	200–250
हरी मटर– ड्रिप सिंचाई	250–300	150–180
भिन्डी (गर्मी)– ड्रिप सिंचाई	400–450	375–400
लोबिया (गर्मी)– ड्रिप सिंचाई	400–450	375–400
प्याज़– ड्रिप सिंचाई	575–675	450–560
लाल शिमला मिर्च– ग्रीन हाउस के साथ ड्रिप सिंचाई	280–300	280–300
आलू– ड्रिप सिंचाई	300–320	220–240
ब्रोकोली– ड्रिप सिंचाई	250–270	200–220

आजकल नये उपकरणों व विभिन्न तरीकों से वर्षाजल का संचयन किया जा रहा है ताकि भूमिगत जल का क्षरण न हो। वर्षाजल संचयन एक ऐसी पद्धति है जिसके प्रयोग का ज्ञान जन सामान्य को होना आवश्यक है क्योंकि यदि हम जल संग्रह व संचय के प्रति जागरूक नहीं हुए तो बढ़ती हुई जनसंख्या, जलवायु परिवर्तन और अनियंत्रित जल के उपयोग हमारे भविष्य के लिये अति घातक सिद्ध हो सकता है, अतः जो वरदान हमें प्रकृति के द्वारा वर्षाजल के रूप में प्राप्त होता है उसे व्यर्थ न जाने देने के बजाय भविष्य के लिये संचय करें। भारत के उत्तरी मैदानी क्षेत्रों तथा पर्वतीय क्षेत्रों की मृदा में जल अवशोषण क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है। परंतु पठारी क्षेत्रों तथा काली मिट्टी के क्षेत्रों की जल धारण क्षमताएं अधिक पाई गई हैं। विभिन्न परिस्थितियों मे विभिन्न जल संचयन पद्धतियां अपनायी जाती है। इस तकनीकी पुस्तिका में सरलता से कार्यान्वित की जाने वाली पद्धतियों पर अधिक ध्यान दिया गया है। पर्वतीय और अधिक वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों के किसान इन पद्धतियों के आलोक में और मैदानी क्षेत्रों हेतु सुझाई गयी सूचनाओं के उपयोग से अपने–अपने क्षेत्रों में जल संचयन संरचनाओं का सम्यक निर्माण अवश्य कर सकते हैं जो कि भूमि के कटाव को नियंत्रण करने के साथ–साथ जल अवशोषण करवा कर जड़ों को और अधिक समय तक पोषक तत्वों की आपूर्ति करने में सहायक रहेगा।

इस प्रकार से पशुओं, मनुष्यों, फसलों तथा अन्य प्राकृतिक संसाधानों का हर तरह से न मात्र बचाव ही संभव हो सकेगा वरन संसाधनों का समुचित सदुपयोग भी होगा। इसलिए मैदानी एवं पर्वतीय सभी किसानों को सलाह दी जाती है कि वर्षा के आगमन से पूर्व उपरोक्त सभी विधियों को अपने–अपने प्रक्षेत्रों में निर्मित संरचनाओं को व्यवस्थित जलवृष्टि उपरांत इनमें जल संचयन करें। अन्यथा यह कहावत तो सभी को याद ही होगी कि ”का वर्षा जब कृषि सुखानी,समय चुकी पुनि का पछितानी“। यह अभिसरण, विभिन्न विभागों के जुड़ाव और वाटरशेड के आधार पर लोगों की भागीदारी और क्षमता निर्माण के बिना सफल नहीं हो सकता है। सबसे अंत में सबसे आवश्यक बात यह है कि मृदा और जल जो कृषि का आधार है उसे सहेजना और उसका सम्यक बर्ताव ही सफलता की कुंजी है। कहा भी गया है कि :

”एकहि साधे सब सधे सब साधे सब जाय
माली सींचे मूल को फूले–फलै अघाय“।

अतएव, मृदा और जल को कृषि का मूल समझ कर इसका सम्यक परिपालन ही यथेष्ट है।

संस्थान की हिंदी प्रकाशन समिति

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय
Prof. M S SWAMINATHAN LIBRARY